महावीर और बुद्ध की समसामयिकता

(एक ऐतिहासिक शोध व समीक्षात्मक अध्ययन)

लेखक
अणुव्रत-परामर्शक मुनिश्री नगराजजी

सम्पादक
मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'द्वितीय'

१९६८

आत्माराम एण्ड संस
दिल्ली नई दिल्ली चण्डीगढ़ जयपुर लखनऊ

MAHAVIR AUR BUDDHA KI SAMSAMAYIKTA

by

Munishri Nagrajji

Rs. 3.00

प्रकाशक

रामलाल पुरी, संचालक

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट, दिल्ली–६

शाखाएं

हौज खास, नई दिल्ली

विश्वविद्यालय क्षेत्र, चण्डीगढ़

चौड़ा रास्ता, जयपुर

१७–अशोक मार्ग, लखनऊ

प्रथम संस्करण : १९६८

मूल्य : ३.०० रुपए

मुद्रक

उद्योगशाला प्रेस,

किंग्सवे, दिल्ली-९

सम्पादकीय

भारतीय इतिहास के अन्तरिक्ष में महावीर और बुद्ध दो जाज्वल्यमान नक्षत्र रहे हैं। उनकी समकालीनता व उनका काल-निर्णय इतिहास के क्षेत्र में इतने धुंधले रहे हैं कि इतिहास-विज्ञों के द्वारा नाना महत्वपूर्ण प्रयत्न किये जाने पर भी विषय असंदिग्ध स्थिति तक नहीं पहुंच पाया। इन विषयों में विभिन्न इतिहासकारों व विद्वानों का जितना मत-भेद पाया जाता है, उतना सम्भवत: प्राग्-मौर्य-काल के इतने सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्तित्वों में से किसी के विषय में भी नहीं पाया जाता। महावीर और बुद्ध की ज्येष्ठता और लघुता को लेकर व उनके पूर्व-निर्वाण-प्राप्ति तथा पश्चात्-निर्वाण-प्राप्ति को लेकर जितने भी सम्भावित विकल्प बनते हैं, वे सभी विभिन्न इतिहासज्ञों द्वारा स्वीकार किये गये हैं।

डा० आर० सी० मजूमदार, डा० एच० सी० रायचौधरी व डा० के० के० दत्त महावीर को ज्येष्ठ व पश्चात्-निर्वाण-प्राप्त स्वीकार करते हैं।[1]

डा० हर्नले,[2] डा० जायसवाल[3] आदि महावीर को लघु व पूर्व-निर्वाण-प्राप्त तथा बुद्ध को ज्येष्ठ व पश्चात्-निर्वाण-प्राप्त बताते हैं।

डा० हर्मन जेकोबी[4] व डा० जार्ल शर्पेण्टियर[5] महावीर को लघु व पश्चात्-निर्वाण-प्राप्त तथा बुद्ध को जयेष्ठ व पूर्व-निर्वाण-प्राप्त मानते हैं।

डा० राधाकुमुद मुकुर्जी महावीर को ज्येष्ठ व पूर्व-निर्वाण-प्राप्त मानते

---

१. *An Advanced History of India*, pp. 85-86.

२. *Encyclopaedia of Religion and Ethics*, by Hastings

३. *Journal of Bihar and Orissa Research Society*, XIII, p. 245.

४. 'क्षमण' पत्रिका में डा० जेकोबी के जर्मन लेख का अनुवाद, वर्ष १३, अंक ७, पृ० १०.

५. *Indian Antiquary*. 1914, pp. 125-6.

हैं और बुद्ध को लघु व पश्चात्-निर्वाण-प्राप्त। किन्तु महावीर का निर्वाण ई० पू० ५४६ में और बुद्ध का ई० पू० ५४४ में मानकर उन्होंने बुद्ध को ज्येष्ठ बना दिया है।[1]

इस प्रकार की मत-भिन्नता से सहसा ही उक्त समस्या की जटिलता का अनुमान लगाया जा सकता है। इसमें भी जहां बुद्ध के निर्वाण-काल का प्रश्न है, वहां इतिहासविदों के बीसों विभिन्न मत पाये जाते हैं; जिनमें पं० भगवानलाल इन्दरजी ने ई०पू० सातवीं शताब्दी में, डा० स्मिथ,[2] डा० राधा-कुमुद मुकर्जी[3] आदि ने ई० पू० छठी शताब्दी में, डा० मजूमदार, डा० राय-चौधुरी, और डा० के० के० दत्त[4] आदि ने ई० पू० पांचवीं शताब्दी में बुद्ध का निर्वाण-काल माना है।

हाल ही में डा० थॉमस ने तो यहाँ तक कह दिया था कि बुद्ध-निर्वाण ई० पू० चौथी शताब्दी में हुआ था और जापान के विद्वानों ने उसका समर्थन भी किया था[5]।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार राइस डेविड्स ने कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया नामक इतिहास-ग्रन्थ में इस विषय की समीक्षा करते हुए लिखा है कि प्राचीन बौद्ध काल-गणना के विषय में बहुत-कुछ लिखे जाने के पश्चात् भी बुद्ध का

---

१. हिन्दू सभ्यता, पृ० २१६-२२४.
२. *Early History of India*, pp. 46-47.
३. हिन्दू सभ्यता, पृ० २२३.
४. *An Advanced History of India*, p. 88.
५. Recently Dr. E. J. Thomas has pointed out (B. C. Law, Volume II, pp. 18-25) that according to the Sarvastivad Ashoka flourished one Century after the *Nirvana* of Buddha and this tradition may be traced even in the Sinhalese Chronicles. According to this date, *Nirvana* falls in the 4th Century B. C. and a Japanese scholar quoted by Thomas placed this event in 386 B. C.
—*Cultural History of India, Age of Imperial Unity*, Vol. I, p. 40, footnote.

सही-सही निर्वाण-काल अब भी निश्चय नहीं कर पाये हैं। इस इतिहास में जो ई० पू० ४८३ का काल बुद्ध-निर्वाण के लिए अपनाया गया है, उसको अब भी केवल कामचलाऊ मान लेना चाहिए। मेरे द्वारा १८७७ में जो कारण इस अनिश्चितता के लिए बताये गए थे, अब भी वे ही कारण मौजूद हैं।"[१]

ऐसी स्थिति में बुद्ध-परिनिर्वाण के समय का वास्तविक निर्णय करना कितना कठिन है, यह सहज ही समझ में आ सकता है। सारा विषय एक जटिल प्रहेलिका के रूप में गवेषक के सामने प्रस्तुत होता है; फिर भी इतिहास के गवेषक को अपना कर्तव्य निभाना होता है। महान् जर्मन कवि गोथे की परिभाषा में —"सत्य को असत्य से, निश्चित को अनिश्चित से और असंदिग्ध को अस्वीकार्य से पृथक् करना इतिहासकार का अपना कर्तव्य है।"[२]

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक अणुव्रत-परामर्शक मुनिश्री नगराजजी ने इस कर्तव्य का पालन जिस तटस्थता और गवेषणशीलता से किया है, इतिहास के क्षेत्र में वह वस्तुतः अपना विशिष्ट स्थान रखेगा।

प्राग्-मौर्यकालीन भारत का इतिहास आज नाना ऐतिहासिक गवेषणाओं के बावजूद भी तमःपूर्ण रहा है। इस काल में अनुसन्धान करने वाले गवेषक को अत्यधिक श्रम करना पड़ता है; क्योंकि इस काल का इतिहास न तो लिपिबद्ध है और न उस समय की विभिन्न तिथियों व घटनाओं के सम्बन्ध

---

१. Unfortunately even after all that has been written on the subject of early Buddhist Chronology, we are still uncertain as to the exact date of Buddha's *Nirvana*. The date 483 B. C. which is adopted in this History must still be regarded as provisional. The causes of this uncertainty which were explained by the present writer in 1877 still remain the same.

—*Cambridge History of India*, Vol. 1, p. 152.

२. The Historian's duty is to separate the true from the false, the certain from the uncertain, and the doubtful from that which cannot be accepted.

—*Goethe's Maxims*, No. 453.

में विशेष अवगति उपलब्ध होती है। विश्रुत भारतीय इतिहासकार डा० रमाशंकर त्रिपाठी ने इस बात को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है : "आधुनिक इतिहास की तुलना में प्राचीन इतिहास का सबसे अधिक विलक्षण तत्त्व है— सामग्री की अल्पता; और वह स्वल्प सामग्री भी कहीं एक ही स्थान में न होकर अनेकों स्थानों में बिखरी हुई पड़ी है। इसके अनुरूप (प्राचीन काल के) इतिहासकार को खान में काम करने वाले की तरह निरन्तर उद्योग, समीक्षात्मक निर्णायकता-रूपी फावड़ा और कुदाली का उपयोग करके प्रशंसात्मक अतिशयोक्ति व काव्यात्मक अतिचित्रण-रूप धूलि से रहित शुद्ध स्वर्णरूप तथ्यों को पाने के लिए कार्य करना होता है।"[१] इस प्रकार हम सहज ही समझ सकते हैं कि अणुव्रत-परामर्शक मुनिश्री नगराजजी को अपने ध्येय तक पहुंचने में कितनी खाइयां पार करनी पड़ी होंगी।

महावीर और बुद्ध की समसामयिकता को पकड़ने के लिए तथा उनकी सही-सही तिथियों को निश्चित करने के लिए मुनिश्री ने मुख्य रूप से जैन आगम-साहित्य व बौद्ध त्रिपिटिक-साहित्य को माध्यम बनाया है। आज तक के इतिहासकारों द्वारा किये गए प्रस्तुत गुत्थी को सुलझाने के प्रयत्नों में इन साधनों को अधिकांशतया गौण रखा गया है और उस उत्तरकालिक साहित्य के आधार से ही इसका समाधान पाने का प्रयत्न किया गया है, जिसकी प्रामाणिकता के विषय में वे स्वयं संदिग्ध रहे हैं। बस, यही कारण था कि विषय किसी निर्णायक स्थिति तक नहीं पहुंच पा रहा था। प्रथम कोटि के इतिहासज्ञ डा० विन्सेंट स्मिथ ने बहुत समय पूर्व ही इतिहासकारों को चेताया था और ऊपर बताये गए मौलिक साहित्य के ऐतिहासिक मूल्य को आंका था।

---

१. The most striking feature (of ancient history), when compared with modern history, is the meagreness of our materials and the wide range over which they lie scattered. Accordingly, they historian must work like a miner with the pick and shavel of his perseverence and critical judgement to get at the gold of facts without the dross of courtly exeggesations and poetic embellishment.

—*History of Ancient India*, p. 9.

अपने सुप्रसिद्ध इतिहास-ग्रन्थ अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया में उन्होंने लिखा था, "जैन धर्म के पवित्र ग्रन्थ (आगम), जिनके विषय में हमारा ज्ञान अब भी बहुत ही अपूर्ण है, अगणित ऐतिहासिक विवरणों और अत्यधिक मूल्यवान् समुल्लेखों से भरे पड़े हैं।

"बौद्धों के जातक व अन्य-आगम ग्रन्थ (त्रिपिटक) ई० पू० ५वीं और ६वीं शताब्दी की भारत की राजनैतिक स्थिति के विषय में प्रासंगिक रूप से अनेकों उल्लेख उपस्थित करते हैं, यद्यपि यह बताई गई घटनाओं के साथ पूर्णतः समकालीन नहीं हैं, फिर भी वे वास्तविक ऐतिहासिक परम्परा को अपने में समाये हुए हैं।

"पाली भाषा की सिलोनी गाथाओं, **दीपवंश** (रचना-काल—संभवतः ईसा की चतुर्थ शताब्दी) व **महावंश** (रचनाकाल—दीपवंश के १५ वर्ष बाद) के बारे में अच्छी जानकारी प्राप्त हुई है। उनमें प्राचीन भारतीय परम्पराओं के, प्रमुखतया मौर्यवंश के, विषय में कुछ असंगत विवरण मिलते हैं। इन सिलोनी कथाओं का मूल्य कभी-कभी अत्यधिक आंका गया है, किन्तु ये कथाएं बहुत ही सावधानीपूर्ण आलोचनाओं की अपेक्षा रखती हैं, जो कि किसी भी प्रचलित साम्प्रदायिक परम्परा के अन्य वर्णनों के लिए अपेक्षित मानी जाती हैं। भारतीय ऐतिहासिक परम्परा का सबसे अधिक व्यवस्थित संग्रह पुराणों में पाई जाने वाली वंशावलियों में सुरक्षित रूप से मिलता है।[1]

---

१. The sacred books of the Jain Sect, which are still very imperfectly known also certain numerous historical statements and allusions of considerable value.

The Jataka or birth stories, and other books of the Buddhist canon, include many incidental references to the political conditions of India in the fifth and sixth centuries B. C., which although not exactly contemporary with the events alluded to, certainly, transmit genuine historical tradition.

The Chronicles of Ceylon in the Pali language, of which the *Dipvamsha*, dating probably from the fourth

मुनिश्री नगराजजी ने महावीर और बुद्ध की समसामयिकता को जैन आगमों व बौद्ध त्रिपिटकों में विवर्णित उनके जीवन-प्रसंगों के आधार पर खोजने का सफल प्रयास किया है। उन्होंने यह भी प्रमाणित किया है कि उक्त सिलोनी गाथाओं (Ceylonese Chronicles) की काल-गणना सावधानी से प्रयुक्त नहीं हुई थी। यही उलझाव का कारण था। इन सिलोनी गाथाओं की मान्यताएँ मौलिक पिटक-ग्रन्थों में बताये गए तथ्यों के साथ प्रत्यक्षतया मेल नहीं खातीं। उदाहरणार्थ — महावंश की मान्यता है कि अजातशत्रु के राज्यकाल के ८वें वर्ष में बुद्ध का निर्वाण हुआ। इतिहासकारों ने इस धारणा को विना समालोचित किये ही स्वीकार कर लिया था। किन्तु बौद्ध पिटक के प्रसंग स्पष्ट बताते हैं कि बुद्ध के बोधि-जीवन के प्रारम्भिक २० वर्षों में ही कभी अजातशत्रु का राज्यारोहण हो गया था, अर्थात् अजातशत्रु के राज्यारोहण के पश्चात् कम-से-कम २५ वर्ष तो बुद्ध जीवित रहे थे : **दीघनिकाय के सामञ्ञफल सुत्त**[1] के अनुसार मगध-नरेश अजातशत्रु बुद्ध के किसी एक राजगृह-वर्षावास में बुद्ध से मिला था। **अंगुत्तरनिकाय की अट्ठकथा**[2] बताती है कि बुद्ध ने बोधि-प्राप्ति के पश्चात् दूसरा, तीसरा, चौथा,

---

century after christ, and the *Mahavamsa*, about a century and a half later in date, are the best known, after several discrepant versions of early Indian traditions, chiefly concerning the Mourya dynasty. These sinhalese Stories, the value of which has been sometimes overestimated, demand cautious criticism at least as much as do other records of popular and ecclesiastical tradition.

"The most systematic record of Indian historical tradition is that preserved in the dynastic list of the purans."

—"Sources of Indian History" in the *Early History of India*, pp. 10-12.

१. दीघनिकाय, १।२.

२. अंगुत्तरनिकाय, अट्ठ-कथा, २. ४. ५.

सत्रहवां और बीसवां वर्षावास राजगृह में बिताया। उसके बौद्ध के शेष २६ वर्षावासों में से २५ तो उन्होंने श्रावस्ती में विताये थे और अंतिम वैशाली में। अब यह कैसे सम्भव हो सकता है कि अजातशत्रु बुद्ध-निर्वाण के ८ वर्ष पूर्व ही राजा बना हो और ८ वर्ष पूर्व ही राजगृह-वर्षावास में उनसे मिला हो?

इस प्रकार की असंगतियों का सूक्ष्म अन्वेषण मुनिश्री नगराजजी ने अपनी इस पुस्तक में मुक्त रूप से किया है और यह उनकी समीक्षात्मक निर्णायकता (Critical Judgment) का सूचक है।

मुनिश्री के इस प्रयास से महावीर और बुद्ध की समसामयिकता तो निकली ही है तथा साथ-साथ बुद्ध-निर्वाण का संदिग्ध काल भी एक असंदिग्ध स्थिति तक पहुंच गया है। इस प्रकार, कहना चाहिए, मुनिश्री ने भारतीय इतिहास की शृंखला में एक नवीन कड़ी का संयोजन कर उसकी रिक्तता को भर दिया है।

बुद्ध और महावीर का काल-निर्णय भारतीय इतिहास में कितने महत्त्व का स्थान रखता है, यह किसी भी इतिहासविद् से छिपा नहीं है। कुछ इतिहासकारों ने तो इसे भी 'सिकन्दर के आक्रमण' की तरह भारतीय इतिहास के उद्वेलित सागर में लंगर के समान माना है।[1] यह वस्तुतः सही भी है। प्राग्-मौर्यकालीन भारतीय राजाओं की काल-गणना (Chronology) को पूर्ण रूप से समझने के लिए उक्त तिथियाँ अत्यन्त ही महत्वपूर्ण हो जाती हैं।

नन्दवंश और शिशुनागवंश के राजाओं की काल-गणना आज भी एक समस्या बनी हुई है। मुनिश्री द्वारा प्रतिपादित तथ्यों के आधार पर इसको सुलझाने में काफी सहायता मिल सकती है। मुनिश्री ने जो काल-गणना प्रस्तुत की है, उससे इतना तो निश्चित हो ही जाता है कि अजातशत्रु ई० पू० ५४८ में गद्दी पर बैठा था। इसके अतिरिक्त शिशुनाग और काकवर्ण के सम्बन्ध में जो गलत धारणाएं सिलोनी-ग्रन्थ प्रस्तुत करते हैं, उनका भी निराकरण हो जाता है। यद्यपि प्रस्तुत ग्रन्थ का मूल विषय तो महावीर व बुद्ध की समसाम-

---

१. भारत का वृहत् इतिहास, प्रथम भाग, प्राचीन भारत, (चतुर्थ संस्करण) ले० प्रो० श्रीनेत्र पाण्डेय, पृ० २४२.

यिकता का रहा है, फिर भी जैसा डा० शान्तिलाल शाह ने बताया है कि काल-गणना का अर्थ कोई एक या दो तारीखों का निर्धारण ही नहीं है; अपितु घटनाओं की समग्र शृंखला को कालक्रम में बांधना है[१]। उसके अनुसार मुनिश्री ने ठेठ शिशुनाग से लेकर चन्द्रगुप्त मौर्य तक के राजाओं की काल-गणना तालिका भी प्रस्तुत की है। नन्दों के काल के विषय में भी जो अनेक मिथ्या प्रचलित मान्यताएँ हैं, इनका भी निराकरण प्रसंगोपात्त किया गया है।

इतिहास और काल-गणना के अतिरिक्त जैन और बौद्ध परम्परा से सम्बन्धित अन्य अनेकों तथ्यों पर भी एक नया प्रकाश मुनिश्री ने डाला है। उदाहरणार्थ—महावीर का निर्वाण उत्तर विहार की पावा में हुआ, न कि दक्षिण विहार वाली पावा में; अजातशत्रु महावीर का अनुयायी था और बुद्ध का केवल समर्थक; आदि-आदि। दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदाय की उत्पत्ति के सम्बन्ध से भी मुनिश्री ने गवेषकों के लिए एक नया संकेत दिया है। बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं को काल-क्रम में बिठाने का प्रयत्न कुछ-एक विद्वानों ने अब तक किया है, किन्तु उस प्रकार के प्रयत्नों में महावीर, गोशालक, श्रेणिक, कोणिक आदि व्यक्तियों से सम्बन्धित बुद्ध के जीवन-प्रसंगों की पूर्ण संगति नहीं बैठी है। उदाहरणस्वरूप - पं० राहुल सांकृत्यायन ने अपने ग्रन्थ बुद्धचर्या में अंगुत्तरनिकाय की अट्ठकथा के आधार पर बुद्ध के वर्षावासों के क्रम को बिठाकर अपने आनुमानिक आधारों पर अन्य जीवनप्रसंगों को काल-क्रम में बांधा है। वहाँ वे श्रामण्यफल सूत्र की घटना का वर्णन बुद्ध के बयालीसवें वर्षावास में करते हैं[२]। किन्तु यह स्पष्ट भूल है। उन्होंने स्वयं यह माना है कि वह वर्षावास बुद्ध ने श्रावस्ती में बिताया था और श्रामण्यफल सूत्र की घटना बुद्ध के किसी राजगृह-वर्षावास की थी। यह बताया जा चुका है, राजगृह में बुद्ध के वर्षावास बोधि-प्राप्ति के २, ३, ४, १७, और २०वें वर्ष में हुए थे।

---

१. Chronology is not one or two dates, but the record of the whole chain of events in time-order.

—*Chronological Problems*, Preface, p. 1.

२. बुद्धचर्या, पृ० ४४८-४५६.

इस प्रकार की अनेक त्रुटियां बुद्ध-चर्या में पाई जाती हैं। मुनिश्री द्वारा उपस्थित किये गए तथ्य बुद्धचर्या को सुसंगत और यथार्थ बनाने में बहुत उपयोगी हो सकते हैं।

मुनिश्री नगराजजी का व्यक्तित्व बहुमुखी है और आपने अपने हर क्षेत्र में प्रभावशाली सफलताएँ अर्जित की हैं। अणुव्रत-आन्दोलन के आप परामर्शक हैं। आन्दोलन के माध्यम से आपने मजदूरों व किसानों से लेकर देश के शीर्षस्थ कर्णधारों तक को नैतिक नव जागरण की दीक्षा में उत्प्रेरित किया है। आपकी विचारकता का प्रभाव साहित्य, दर्शन और राजनीति के क्षेत्र में बहुत व्यापक होकर पड़ा है।

जैन आगमों और बौद्ध त्रिपिटकों का ऐतिहासिक व दार्शनिक दृष्टि से तुलनात्मक अनुशीलन आपका अधिकृत विषय है। पालि-वाङ्मय में भगवान् महावीर[2], निशीथ और विनयपिटक : एक समीक्षात्मक अध्ययन[3], गणिपिटक और त्रिपिटक में उक्ति-साम्य और शब्द-साम्य[4], महावीर और बुद्ध[5] आदि एतद्विषयक आपके अनेकों निबन्ध प्रकाश में आये हैं और अभी-अभी आप एक सुविस्तृत शोध-ग्रन्थ इसी सम्बन्ध से लिख रहे हैं। यही कारण था कि महावीर और बुद्ध की समसामयिकता के उलझे विषय को आप तार-तार कर सुलझा पाये हैं।

इससे पूर्व भी आप अहिंसा व दर्शन के सम्बन्ध में अनेकों ग्रन्थ लिख चुके हैं। आप जिस किसी विषय पर लिखते हैं, बहुत ही तलस्पर्शी व सर्वांगीण लिखते हैं; अतः वह अपने-आप में डॉक्टरेट का थीसिस-सा हो जाता है।

---

१. नवभारत टाइम्स, दिल्ली, तारीख ३ अप्रैल, ६० तथा आचार्य भिक्षु-स्मृति ग्रन्थ, कलकत्ता, १९६२, खण्ड २, पृ० ६-१०.
२. आचार्यश्री-तुलसी, अभिनन्दन-ग्रन्थ, दिल्ली, १९६२, चतुर्थ अध्याय, पृ० ६९-९७.
३. महावीर जयन्तिस्मारिका, राजस्थान जैन-सभा, जयपुर, अप्रैल १९६३, पृ० ८४-८८.
४. हिन्दुस्तान (दैनिक), दिल्ली.

नवभारत टाइम्स, दिल्ली, ने आपके जैनदर्शन और आधुनिक विज्ञान[२] ग्रन्थ की समालोचना करते हुए लिखा था —"मुनिश्री नगराजजी जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी परम्परा के मुनि हैं। संघीय व्यवस्था के अनुसार कोई भी तेरापन्थी साधु उपाधि-ग्रहण नहीं करते। यदि ऐसा नहीं होता तो उनके नाम के साथ अब तक अनेक उपाधियाँ जुड़ी होतीं।"

आपके द्वारा लिखित अहिंसा-विवेक ग्रन्थ के सम्बन्ध में राजस्थान के उप शिक्षानिर्देशक डा० शम्भुलाल सक्सेना के उद्गार हैं—"इस ग्रंथ में प्राग्-आर्यकाल से लेकर गांधी-युग तक के अहिंसा-सम्बन्धी उन्मेषों और निमेषों का बहुत ही शोधपूर्ण और सजीव चित्रण हुआ है। कोई भी विश्वविद्यालय इस ग्रन्थ पर मुनिश्री को डी० लिट् की उपाधि देने में अपना गौरव मानेगा।"[४]

मुनिश्री का प्रस्तुत ग्रन्थ पाठकों के हाथ में है। लेखक के अध्ययन की गुरुता प्रयुक्त ग्रन्थों की तालिका से व्यक्त हो जाती है।

अपेक्षा है, इस समीक्षात्मक प्रबन्ध के समीक्षात्मक अवलोकन की। बहुत बार अपनी बद्धमूल धारणाओं के कारण हम नये निष्कर्षों को अपने प्रथम दृष्टिपात में ही गौण मान लेते हैं, यह लेखक के साथ न्याय नहीं होता। ऐसा नहीं हुआ तो अवश्य ही मुनिश्री का यह प्रबन्ध इतिहास के इस अंधेरे कोने का एक चिरस्थायी दीप होगा, ऐसी आशा है।

प्रस्तुत पुस्तक के सम्पादन व तत्सम्बन्धी अन्य कार्यों में जितना श्रम मुझे उठाना पड़ा है, उससे कहीं सौ गुना अधिक आनन्द और ज्ञान मुझे मिला है। आधुनिक अनुसंधान पुस्तकों की पद्धति से इसका सम्पादन करने का प्रयत्न मैंने किया है। इस कार्य में मुझे मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' का जो मार्ग-दर्शन मिला, उसे मैं भूल नहीं सकता।

५ जून, १९६३
नाथद्वारा

—मुनि महेन्द्रकुमार 'द्वितीय'

---

२. प्रकाशक, आत्माराम एण्ड संस दिल्ली, १९५८.

३. प्रकाशक, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता, १९६२.

४. नाथद्वारा में दिये गए ता० ३ जून १९६३ के भाषण से।

प्राक्कथन

जैन और बौद्ध परम्पराओं के सम्बन्ध से ऐतिहासिक व दार्शनिक अनुशीलन कुछ वर्षों से मेरा अपना विषय बन रहा था। इस सम्बन्ध से कुछ लिखा भी था और कुछ लिख भी रहा था। अकस्मात् श्री कस्तूरचन्द जी बांठिया का एक पत्र **जैन-भारती** के सम्पादक को मिला। वह पत्र स्वयं में एक जटिल प्रश्न था। श्री बांठिया जी का कहना था—"मुनिश्री नथमलजी-लिखित, 'भगवान महावीर गौतम बुद्ध से ज्येष्ठ थे' **जैन धर्म के मौलिक तत्त्व, प्रथम भाग** में जब पहले-पहल मैंने देखा तो चौंक उठा था। इसके प्रमाण-सहित स्पष्टीकरण का मैंने प्रयत्न किया, पर सफल नहीं हुआ। आपके साप्ताहिक के तारीख १ जुलाई के अंक में अणुव्रत विभाग के परामर्शक मुनिश्री नगराजजी ने अपने 'भगवान् श्री महावीर और गौतम बुद्ध' शीर्षक लेख में इस तथ्य को निम्न रूप से दोहराया है, भगवान् श्री महावीर गौतम बुद्ध से ज्येष्ठ थे। भगवान् बुद्ध ने जब अपना प्रचार प्रारम्भ किया था, तब भगवान् श्री महावीर धर्म-प्रचार की दिशा में बहुत-कुछ कर चुके थे।

"भगवान् महावीर इस संसार में ७२ वर्ष तक जीते रहे और गौतम बुद्ध का निर्वाण उनके ८०वें वर्ष में हुआ, इसमें किसी भी ऐतिहासिक ने आज तक शंका नहीं की। दोनों में से किसका निर्वाण पहले हुआ, यह अवश्य ही इतिहासज्ञों में विवादास्पद विषय रहा था। यदि भगवान् महावीर गौतम बुद्ध से ज्येष्ठ थे, तो उनका निर्वाण अवश्य ही मानना होगा, परन्तु जैनगमों के उल्लेख से स्व० डा० हर्मन जैकोबी ने अपने जीवन के अन्तिम लेख **बुद्ध और महावीर का निर्वाण एवं उनके समय की मगध की राजकीय स्थिति** में यह सप्रमाण प्रमाणित किया था कि महावीर, बुद्ध से कितने ही, सम्भवतः सात वर्ष अधिक, जीवित रहे थे। महावीर को केवल-ज्ञान उनकी ४२ वर्ष की अवस्था में हुआ और उसके बाद ३० वर्ष तक उन्होंने धर्म-प्रचार किया था। पक्षान्तर में भगवान् गौतम बुद्ध को बोधि-प्राप्ति उनकी ३६ वर्ष की उम्र में

हुई थी और ८० वर्ष की उम्र में उनका निर्वाण हुआ। इस प्रकार बुद्ध ने कुल ४४ वर्ष धर्म-प्रचार किया था। जेकोबी के अनुसार महावीर से बुद्ध कम-से-कम सात वर्ष पहले निर्वाण-प्राप्त हुए तो भगवान् महावीर गौतम बुद्ध से धर्म-प्रचार पहले ही बहुत-कुछ कर चुके थे, यह कैसे सम्भव हो सकता है? तेरापंथ सम्प्रदाय जिन ३२ सूत्रों को मानता है, उनमें एक उववाई सूत्र भी है और इस उववाई सूत्र के आधार पर ही स्वर्गीय जैकोबी पाश्चात्यों की उस गलत धारणा का जो १. मज्झिम निकाय के सामगाम सुत्त, २. दीघनिकाय के पासादिक सुत्तंत और ३. दीघनिकाय के संगीति सुत्तंत पर आधारित थीं, निरसन किया था। अतः तेरापंथ सम्प्रदाय की यह भ्रान्ति बिल्कुल ही समझ में नहीं आती है। महावीर, गोशालक की मृत्यु के बाद सोलह वर्ष धर्म-प्रचार करते रहे थे, यह भी उन्होंने स्वमुख से भगवतीसूत्र में कहा है और कुणिक के मगध का राजा बनने के बाद ही महाशिलाकंटक और रथमुशल युद्ध हुआ था, जिसे गोशालक ने चरम बताया था। बौद्धों के अनुसार, कुणिक (अजातशत्रु) के राज्यारोहण के ८वें वर्ष में गौतम बुद्ध का निर्वाण हुआ।

"इन सब प्रमाणों के बावजूद तेरापंथ सम्प्रदाय की उक्त मान्यता कैसे बनी, इस पर प्रकाश डालना आवश्यक है। इस विषय का सप्रमाण लेख आप लिख कर अवश्य ही प्रकाशित करेंगे। जैन इतिहास की इस घटना में हम जैनों में तो किसी तरह का मतभेद होना ही नहीं चाहिए।"

बांठियाजी का पत्र मुझे सरदारशहर चातुर्मास (वि० सं० २०१९) के प्रारम्भ में मिला। बहुत व्यस्तता थी। एक ओर तो चालू साहित्य का कार्य, दूसरी ओर चातुर्मासिक पर्व व अन्यान्य कार्यक्रम। सरदारशहर लगभग १५०० जैन परिवारों की सघन बस्ती है। उन सबको संभाले रहना भी अपने-आप में एक गुरुतर कार्य था। मैंने इस पत्र के सम्बन्ध में कोई समाधानमूलक ध्यान नहीं दिया। श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा के जैन-भारती विभाग से इसी पत्र की प्रतिलिपि उदयपुर में आचार्यश्री को भी निवेदित करने के लिए प्रेषित की गई थी। आचार्य-प्रवर का संकेत मिला—मैं ही इस प्रश्न के सम्बन्ध में कुछ लिखूं। चातुर्मास का उत्तरार्ध चालू हुआ। कुछ कार्यक्रमों की अल्पता हुई और कुछेक को स्थगित कर देना पड़ा। इस प्रकार इस पुस्तक का लेखन-कार्य आरम्भ हुआ।

श्री बांठियाजी ने आश्चर्य प्रकट किया है कि उक्त प्रकार के बहुत सारे प्रमाणों के रहते तेरापंथ सम्प्रदाय की यह मान्यता कैसे बनी ? वस्तु-स्थिति यह है कि साम्प्रदायिक मान्यता का तो यह प्रश्न ही नहीं है। महावीर ज्येष्ठ हों या बुद्ध, महावीर पूर्व निर्वाण-प्राप्त हों या बुद्ध—इनसे तेरापंथ की किसी आधारभूत धारणा में कोई अन्तर आने वाला नहीं है। मुनिश्री नथमलजी की ओर से भी महावीर के ज्येष्ठ होने की जो धारणा थी, वह जैन और बौद्ध परम्पराओं में व इतिहास में उपलब्ध कुछेक मूलभूत तथ्यों पर ही आधारित थी। मुनिश्री नथमलजी ने अपने ग्रन्थ **जैन-दर्शन के मौलिक तत्व** में महावीर के ४० वर्ष बाद बुद्ध का होना लिखा है। वह उनकी स्वतन्त्र शोध का निष्कर्ष न होकर किसी एक अभिमत का स्वीकार-मात्र था। प्रस्तुत पुस्तक में इस विषय को नये सिरे से ही विशुद्ध ऐतिहासिक दृष्टिकोणों से सोचा गया है। यह कोई ऐसा विषय नहीं था, जो प्राचीन धारणाओं से बदलकर नहीं लिखा जा सकता था। तटस्थ भावना में जो सत्य लगा, वह दृढ़तापूर्वक लिखा गया है। जो कुछ माना गया है, उसमें भी अपेक्षित परिष्कार के लिए सदैव अवकाश है।

परम्परा और इतिहास

ईस्वी सन् १९५६ के मई मास के (वैशाख) की पूर्णिमा को भगवान् बुद्ध को २५०० वीं महापरिनिर्वाण-तिथि मनाई जा चुकी है। यह समय सिलोनी गाथा **महावंश** की काल-गणना का है, जो बौद्ध-परम्परा में सर्वाधिक रूप से प्रचलित है। इतर काल-गणनाओं को माननेवाले बौद्ध सम्प्रदाय भी इस वर्ष को मनाने में सम्मिलित रहे हैं।[1] प्रस्तुत पुस्तक में जो निष्कर्ष प्रस्तुत हुआ है, उसके अनुसार बुद्ध-निर्वाण को २५०० वर्ष पूर्ण होने में अब भी लगभग ३५ वर्ष शेष हैं। परम्परा-मान्य वीर-निर्वाण संवत् और प्रस्तुत पुस्तक की काल-गणना दोनों के ही अनुसार महावीर-निर्वाण के २५०० वर्ष अब से १० वर्ष बाद (ईस्वी सन् (१९७३) में पूर्ण होते हैं। यह एक सहज स्थिति है। परम्परा कभी इतिहास-सम्मत

---

१. बौद्ध धर्म के २५०० वर्ष, 'आजकल' का वार्षिक अंक, भूमिका डा० राधाकृष्णन्, पृष्ठ १.

हो जाती है, कभी नहीं भी। भगवान् महावीर का परम्परा-सम्मत् निर्वाण काल जैसे इतिहास-सम्मत बन पाया है, वैसे उनके परम्परा-सम्मत जन्म-स्थान और निर्वाण-स्थान इतिहास-सम्मत नहीं बन पाये। गवेषकों के लिए इतिहास और परम्परा के विभिन्न निर्णय कभी चौंकाने वाले नहीं बनते।

एक बात, जो कि प्रस्तुत प्रसंग से कुछ दूर की तो है, पर उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए मैं उसकी चर्चा यहां कर देता हूं। जैसा कि बताया गया है कि १० वर्ष पश्चात् भगवान महावीर की निर्वाण-तिथि आ रही है। भगवान् बुद्ध की निर्वाण-काल की गणना में बहुत सारे सम्प्रदाय-भेद हैं और यहां तक कि कुछ सम्प्रदाय बुद्ध का जन्म, अभिनिष्क्रमण और निर्वाण, ये सब वैशाखी पूर्णिमा को मानते हैं; तो कुछ सम्प्रदाय जन्म व अभिनिष्क्रमण की तिथि वैशाखी पूर्णिमा को निर्वाण-तिथि कार्तिकी पूर्णिमा को मानते। हैं तिस पर भी बौद्ध धर्म की सामुदायिक प्रभावना को ध्यान में रखते हुए लगभग सभी बौद्ध देशों ने २५००वीं निर्वाण-तिथि एकमत होकर मनाई और बुद्ध के संदेशों को फिर से एक बार सारे भूमण्डल पर गुंजाया। जैन समाज के लिए आने वाला भगवान् महावीर का २५००वां निर्वाण-दिवस एक स्वर्णिम अवसर है। जैन समाज की कोई शाखा-प्रशाखा मान्यता रूप से इसमें विमत नहीं है। आवश्यकता है—जैन समाज को अखिल भारतीय स्तर पर सुसंगठित और सुव्यवस्थित होकर इस पुण्य पर्व को मनाने की। समाज के विचारकों व क्रियाशील लोगों का अभी से इस ओर सक्रिय होना अत्यन्त अपेक्षित है।

प्रस्तुत विषय के अन्वेषण और लेखन में मेरे सहयोगी मुनि महेन्द्रकुमारजी 'द्वितीय' का अभिन्न साहचर्य रहा है। मेरे से भी अधिक समय उनका इस कार्य में लगा है। B. Sc. (ऑनर्स) की डिग्री ही उनके मेधावी होने की सूचक है। वे किसी भी विषय की सूक्ष्मता में बहुत शीघ्र ही पहुंच जाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक को सुसंपादित कर लेना उनका अपना कार्य था ही।

गधइया-परिवार सरदारशहर के श्रावक-समाज में अग्रणी परिवार है। पीढ़ियों से जैन शासन को उनकी उल्लेखनीय सेवाएं रही हैं। नेमीचन्द गधइया के सुपुत्र सम्पतकुमारजी गधइया बी० कॉम० साहित्यप्रेमी व्यक्ति हैं। इतिहास उनका अधिकृत विषय है। प्रस्तुत विषय पर अब तक क्या-क्या काम हो चुका है, उस सम्बन्ध में बहुत सारी नवीन सूचनाएँ मुझे उनसे मिलीं। विषय के

परिशीलन में भी उनका उल्लेखनीय साहचर्य रहा।

मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' का इस वर्ष का चातुर्मास हांसी था। दूर रहते भी उन्होंने अपना क्रम निभाया। विषय से सम्बन्धित वहुत सारी अलभ्य सामग्रियां उन्होंने संजोईं और मुझे सूचित कीं। अब तक का मेरा कोई साहित्य नहीं, जिसमें उनका लगाव न रहा हो।

मैं उन लेखकों, इतिहासकारों व विद्वानों का विशेष आभारी हूं जिनके ग्रन्थों व लेखों का उपयोग मैंने अपने विषय-प्रतिपादन में किया है। प्रत्येक अनुसंधान विरासत पर खड़ा होकर आगे बढ़ता है। उसका आगे बढ़ना भी अगली पीढ़ी की विरासत बनता है। अनुसंधाता और शोध के कार्यों का यही क्रम है। कोई भी शोध अन्तिम नहीं होती और कोई भी गवेषक प्रथम नहीं होता।

श्रावण-शुक्ल ७, सम्वत् २०२०. —मुनि नगराज
भिक्षु-बोधि-स्थल, (राजनगर)

अनुक्रम

मनुष्य स्वभाव से ही जिज्ञासाशील प्राणी है। जिज्ञासा से ज्ञान बढ़ता है और ज्ञान से जिज्ञासा बढ़ती है। ज्ञान और जिज्ञासा का यही क्रम जीवन का निःसीम आनन्द है। ज्ञान और जिज्ञासा का यही युग्म सत्य-प्राप्ति का अविकल सोपान है। इतिहास के प्रथम दृष्टिपात में भगवान् महावीर व बुद्ध एक प्रतीत हुए[1] व कुछ विद्वानों ने प्रथम गणधर गौतम स्वामी को ही गौतम बुद्ध माना।[2] जिज्ञासा के दो डगों ने स्पष्ट कर दिया, वे एक ही देश और एक ही काल में होनेवाले दो महापुरुष थे, जो क्रमशः ७२ व ८० वर्ष

---

१. *S.B.E.*, vol. XXII, Introduction, p. XV

२. According to the Jains, the chief disciple of their Tirthankara Mahāvīra was called Gautama Swami or Gautama Indrabhuti (Ward's *Hindus*, II, p. 247 and *Colebrooke's Essays*, vol. II, p. 279.) whose identity with Gautama Buddha was suggested by both Dr. Hamilton and Major Delamaine and was accepted by Colebrooke. This is what Colebrooke says in his essays, vol. II, p. 276 : "In the *Kalpa Sutra* and in other books of the Jains, the first of Māhavīra's disciples is mentioned under the name of Indrabhuti, but in the inscriptions under that of Gautama Swami. The names of the other ten precisely agree, whence it is to be concluded that Gautama, the first one of the first list, is the same with the Indrabhuti, first of the second list. It is certainly probable, as remarked by Dr. Hamilton and Major Delamaine that the Gautama of the Jains and Gautama of Buddhas is the same personage.

इस धरातल पर विद्यमान रहे।[1] जिज्ञासा का अगला कदम उठा—उनकी समसामयिकता कितने वर्षों की थी और उनमें वयोमान की दृष्टि से छोटे और बड़े कौन थे ? इस ओर भी अनेक चिन्तकों का ध्यान बँटा है और अब तक अनेक महत्त्वपूर्ण प्रयत्न इस दिशा में हुए हैं। विषय बहुत-कुछ स्पष्ट हुआ है, पर निर्विवाद नहीं। आगमों, त्रिपिटकों व इतिहास के परस्पर-विरोधी प्रतीत होने वाले प्रसंगों ने विचारकों को नाना निर्णयों पर पहुँचा दिया है। पिछले प्रयत्नों का वर्गीकरण, उनकी समीक्षा तथा अपने स्वतन्त्र चिन्तन से प्रस्तुत प्रकरण को एक असंदिग्ध स्थिति तक पहुँचाना नितान्त अपेक्षित है।

Two out of eleven disciples of Māhavīra survived him viz., Sudharma and Gautama. Sudharma's spiritual successors are the Jain priests whereas the Gautama's followers are the Buddhists.

—Manmath Nath Shastri, *Buddha : His life, his teachings, his order*, 1910 (Second edition), pp. 21-22

१. कल्पसूत्र, १४७ तथा दीघनिकाय, महापरिनिब्बाण सुत्त, २।३।१६

डा० जेकोबी

सर्व प्रथम और महत्त्वपूर्ण प्रयत्न इस दिशा में डा० हरमन जेकोबी का रहा है। डा० मैक्स मूलर द्वारा सम्पादित पूर्व के पवित्र ग्रन्थ (Sacred Books of the East) नामक ५० खण्डों की सुविस्तृत ग्रन्थ-माला के अन्तर्गत खण्ड २२ तथा खण्ड ४५ के अनुवादक डा० जेकोबी रहे हैं। खण्ड २२ में आचारांग और कल्प तथा खण्ड ४५ में उत्तराध्ययन व सूत्रकृतांग; ये चार आगम हैं। डा० जेकोबी ने जैन धर्म को और भी उल्लेखनीय सेवाएं दी हैं। २३वें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ को ऐतिहासिक पुरुषों की कोटि में लाने का श्रेय भी उनको ही है।[१] इतिहास के क्षेत्र में जो यह भ्रम था कि जैन धर्म बौद्ध धर्म की ही एक शाखा मात्र है, उसका निराकरण भी मुख्यत: डा० जेकोबी के द्वारा ही हुआ है।[२] उन्होंने जैन परम्पराओं के साक्षात् दर्शन की दृष्टि से दो बार भारतवर्ष की यात्राएँ भी की थीं। अनेक जैन आचार्यो से उनका यहाँ साक्षात् सम्पर्क हुआ था।[3]

डा० जेकोबी ने भगवान् महावीर और बुद्ध के निर्वाण-प्रसंग की मुख्यतया दो स्थानों पर चर्चा की है और वे दोनों चर्चाएँ एक-दूसरे से सर्वथा विपरीत हैं। एक समीक्षा में उन्होंने भगवान् महावीर को पूर्व-निर्वाण-प्राप्त

---

१. *S.B.E.*, vol. XLV., Introduction to *Jaina Sutras*, part II, p. XXI, 1894
२. *S.B.E.*, vol. XXII., Introduction to *Gaina Sutras*, part I, pp. IX-XIX, 1884
३. सन् १९१४, मार्च में उनकी दूसरी भारत-यात्रा हुई थी। लाडनूं में तेरापंथ के अष्टमाचार्य श्री कालूगणी के साथ उनका तीन दिनों का महत्त्वपूर्ण सम्पर्क रहा।

और भगवान् वुद्ध को पश्चात्-निर्वाण-प्राप्त प्रमाणित किया है, तो दूसरी समीक्षा में भगवान् वुद्ध को पूर्व-निर्वाण-प्राप्त और भगवान् महावीर को पश्चात्-निर्वाण-प्राप्त प्रमाणित किया है।

प्रथम समीक्षा

उनकी पहली समीक्षा **आचारांग सूत्र** की भूमिका (ई० १८८४) में मिलती है। वहाँ वे महावीर और वुद्ध के जीवन-प्रसंगों का उल्लेख करते हुए लिखते हैं "यहाँ हमें महावीर और वुद्ध के मुख्य-मुख्य जीवन-संस्मरणों को सामने लाकर उनके अन्तर को समझना है। वुद्ध कपिलवस्तु में जन्मे थे, महावीर वैशाली के समीपवर्ती किसी एक ग्राम में। वुद्ध की माता का वुद्ध के जन्म के वाद देहान्त हो गया, महावीर के माता-पिता महावीर की युवावस्था तक जीवित थे। वुद्ध अपने पिता के जीवन-काल में ही और पिता की इच्छा के विरुद्ध साधु वन गए थे; महावीर अपने माता-पिता की मृत्यु के वाद अपने वड़ों की आज्ञा लेकर साधु वने थे। वुद्ध ने ६ वर्ष तक तपस्यामय जीवन विताया, महावीर ने १२ वर्ष तक। वुद्ध ने सोचा कि मैंने इतने वर्ष व्यर्थ गँवाये और ये सव तपस्याएँ मेरे ध्येय की प्राप्ति के लिए निरर्थक निकलीं, महावीर को तपस्या की आवश्यकता सत्य लगी और उन्होंने तीर्थंकर वनने के पश्चात् भी उनमें से कुछ-एक को रख छोड़ा। मंखलीपुत्र गोशालक महावीर के विरोधियों में जितना प्रमुख है, उतना वुद्ध के विरोधियों में नहीं है तथा जमाली जो कि जैन धर्म-संघ में प्रथम निह्नव हुआ, वुद्ध के साथ कहीं नहीं पाया जाता। वुद्ध के सभी शिष्यों के नाम महावीर के शिष्यों के नाम से भिन्न हैं। इन असमानताओं की गणना के अन्त में, वुद्ध का निर्वाण कुशीनगर में हुआ जवकि महावीर का निर्वाण पावा में और वह भी निश्चित रूप से वुद्ध के निर्वाण से पूर्व।"[1]

डा० जेकोवी ने यहाँ जरा भी स्पष्ट नहीं किया है कि उनकी यह

---

१. "We shall now put side by side the principal events of Buddha's and Mahāvīra's lives, in order to demonstrate their differences. Buddha was born in Kapilvastu,

धारणा किन प्रमाणों पर आधारित है और न उन्होंने यह ही समीक्षा की है कि महावीर और बुद्ध के जन्म और निर्वाण कब हुए थे। अतः उक्त विवरण से यह पता लगाना कठिन होता है कि उनकी इस धारणा से महावीर और बुद्ध की समसामयिकता कितनी थी।

महावीर का निर्वाण-काल

उनके द्वारा अनूदित जैन सूत्रों के दोनों खण्डों की भूमिकाओं के अवान्तर प्रसंगों से यह भलीभांति प्रमाणित होता है कि उन्होंने भगवान् महावीर का निर्वाण ई० पू० ५२६ में माना था। वे लिखते हैं : "जैनों की यह सर्वसम्मत मान्यता है कि जैन सूत्रों की वाचना वल्लभी में देवर्द्धि (क्षमा-श्रमण) के तत्त्वावधान में हुई। इस घटना का समय वीर-निर्वाण से ९८० (या ९९३) वर्ष बाद का है, अर्थात् ४५४ (या ४६७) ई० का है, जैसा

Mahāvīra in villege near Vaishali ; Buddha's mother died after his birth, Mahāvīra's parents lived to see him a grown up man ; Buddha turned ascetic during the lifetime and against the will of his father, Mahāvīra did so after the death of his parents and with the consent of those in power; Buddha led a life of austerities for six years, Mahāvīra for twelve; Buddha thought these years wasted time and that all his penances were useless for attaining his end, Mahāvīra was convinced of the necessity of his penance and preserved in some of them even after becoming a Tirathankara, Amongst Buddha's opponents Gosala Makhaliputra is by no means so prominent as amongst Mahāvīra's nor among the former do we meet Gamali who caused the first schism in Gaina church. All the disciples of Buddha bear other names than those of Mahāvīra. To finish this enumeration of differences, Buddha died in Kusinagara, whereas Mahāvīra died in Pāpā, avowedly before the former.

—*S.B.E.*, vol. XXII. Introduction, pp. XVII-XVIII

कि कल्पसूत्र (गाथा १४८) में ही बताया गया है।[1]

इस उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि डा० जेकोबी ने वीर-निर्वाण का समय ई० पू० ५२६ का माना है; क्योंकि ५२६ में ४५४ और ४६७ जोड़ने पर ही क्रमश: ९८० और ९९३ वर्ष होते हैं। उनके द्वारा अनूदित दूसरे खण्ड की भूमिका में, जोकि पहले खण्ड की भूमिका से १० वर्ष बाद (ई० १८९४) लिखी गई है, उन्होंने इसी तथ्य को प्रसंगोपात्त फिर दोहराया है।[2] उसी भूमिका में एक प्रसंग और मिलता है, जोकि ई० पू० ५२६ की निर्विवाद पुष्टि करता है। वे लिखते हैं, "कौशिक गोत्री खलुय रोहगुत्त ने, जोकि जैन धर्म का छठा निह्नव था, वीर-निर्वाण के ५४४ वर्ष बाद अर्थात् ई० १८ में त्रैराशिक मत की स्थापना की।"[3] यहाँ पर भी ५४४ में से ५२६ बाद देने पर ही ई० सन् १८ का समय आता है।

बुद्ध का निर्वाण-काल

इसी प्रकार बुद्ध के विषय में भी डा० जेकोबी ने अपनी इन भूमिकाओं में जन्म और निर्वाण के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट काल व्यक्त नहीं किया है। परन्तु उन्हीं भूमिकाओं में अन्य प्रसंगों से जो कुछ उन्होंने लिखा है, उनसे उनकी बुद्ध के जन्म और निर्वाण-काल सम्बन्धी धारणा भी व्यक्त हो जाती है।

---

१. "The redaction of the Gaina's canon or the Siddhanta took place, according to the unanimous tradition, in the council of Vallabhi, under the presidency of DEVARDDHI. The date of this event 980 (or 993) A.V., corresponding to 454 (or 467) A.D., incorporated in the Kalpa Sutra (148)···"

—*S.B.E.*, vol. XXII, Introduction, p. XXXVII.

२. *S.B.E.*, vol. XLV, Introduction, p. XL

३. "Khaluya Rohagutta of the Kausika Gotra, with whom originated the sixth schism of the Gainas, established Trairasikamatam in 544. A.V. (18 A.D.)."

—*S.B.E.*, vol. XLV, Introduction, p. XXXVII

जैसे कि वे मैक्स मूलर का उद्धरण देते हुए लिखते हैं : "बौद्ध शास्त्रों के लिखे जाने की अन्तिम तिथि ई० पू० ३७७ थी, जिस समय कि बौद्धों की दूसरी संगीति हुई थी।"[१] यह सर्व-सम्मत धारणा है कि यह संगीति बुद्ध-निर्वाण के १०० वर्ष बाद वैशाली में हुई थी।[२] फलित यह होता है कि बुद्ध-निर्वाण का समय ई० पू० ४७७ ठहरता है।

महावीर और बुद्ध की निर्वाण-तिथि डा० जेकोबी की उस समय की धारणा के अनुसार यदि ये ही रही हों, तो महावीर बुद्ध से ४१ वर्ष ज्येष्ठ हो जाते हैं।[3]

---

१. "The latest date of Buddhist canon at the time of the second council 377 B.C." Quoted from *S.B.E.* vol. X, p. XXXII, in *S.B.E.*, vol. XXII, p. XLII

२. देखें, चुल्लवग्ग, १२-१-१; बुद्धचर्या, ले० राहुल सांकृत्यायन, पृ० ५५६, *Political History of Ancient India*, by H.C. Ray choudhuri Sixth Edition, 1953, p. 228; आजकल का वार्षिक अंक, "बौद्ध-धर्म के २५०० वर्ष में चार बौद्ध परिषदें" नामक भिक्षु जिनान्द का लेख, पृ० ३०

३.

	भगवान् महावीर
निर्वाण	ई० पू० ५२६
आयु	७२ वर्ष
अतः जन्म	ई० पू० ५९८
	भगवान् बुद्ध
निर्वाण	ई० पू० ४७७
आयु	८० वर्ष
अतः जन्म	ई० पू० ५५७
इस प्रकार	५९८-५५७=४१

: ३ :

डा० जेकोबी की दूसरी समीक्षा

डा० जेकोबी की एतद्विपयक चर्चा का दूसरा स्थल 'वुद्ध और महावीर का निर्वाण' नामक उनका लेख है। यह लेख उन्होंने जर्मनी की एक शोध-पत्रिका के २६वें भाग में सन् १६३० में लिखा था। इस लेख का गुजराती अनुवाद भारतीय विद्या नामक शोध-पत्रिका में सन् १६४४, वर्ष ३, अंक १, जुलाई में प्रकाशित हुआ था और उसका हिन्दी अनुवाद श्री किस्तूरमलजी बांठिया द्वारा संगृहीत होकर श्रमण के सन् १६६२, वर्ष १३, अंक ६-७ में प्रकाशित हुआ था। डा० जेकोबी के इस लेख का निष्कर्ष है कि वुद्ध का निर्वाण ई० पू० ४८४ में हुआ था तथा महावीर का निर्वाण ई० पू० ४७७ में हुआ था।[1] तात्पर्य, महावीर वुद्ध से सात वर्ष बाद निर्वाण को प्राप्त हुए और आयु में उनसे १५ वर्ष छोटे थे।

अन्तिम लेख ?

श्री किस्तूरमल जी बाँठिया के कथनानुसार डा० जेकोबी का यह अन्तिम लेख है और इसमें एतद्विपयक अपनी परिवर्तित धारणा उन्होंने व्यक्त की है।[2] आश्चर्य यह है, डा० जेकोबी ने 'वुद्ध और महावीर का निर्वाण' इस सुविस्तृत लेख में यह कहीं भी चर्चा नहीं की कि मेरा एतद्विपयक अभिमत पहले यह था और अब यह है तथा वह इन कारणों से परिवर्तित हुआ है। उन्होंने तो केवल अपने लेख के प्रारम्भ में कहा है : "एक पक्ष यह कहता है, परम्परा से चली आ रही और प्रमाणों द्वारा प्रस्थापित इतिहास की धारणा के अनुसार गौतम वुद्ध महावीर से कितने ही वर्ष पूर्व निर्वाण प्राप्त हो गए थे।

---

१. श्रमण, वर्ष १३, अंक ६, पृ० १०

२. वही, पृ० ६; श्री बाँठिया द्वारा लिखित लेख की पूर्व पीठिका

दूसरा पक्ष यह कहता है कि बौद्ध शास्त्रों में जो उल्लेख मिलते हैं, उनसे यह जाना जाता है कि महावीर बुद्ध से थोड़े ही समय पूर्व कदाचित् निर्वाण-प्राप्त हुए थे। इस प्रत्यक्ष दिखनेवाले विरोध में सत्य क्या है? इसी शोध के लिए यह लेख लिखा जा रहा है।"[1] यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि अपने प्राक्तन मत को अपने अनूदित ग्रन्थ की भूमिकाओं में वे लिख चुके थे और उनके सामने वे ग्रन्थ प्रकाशित होकर भी आ गये थे; फिर भी प्रस्तुत निबन्ध में वे अपनी उस अभिव्यक्ति का सोल्लेख निराकरण नहीं करते; यह क्यों?

हो सकता है, किन्हीं परिस्थितियों में ऐसा हो गया हो। यहाँ हमें उसकी छानबीन में नहीं जाना है। यहाँ तो हमें यही देखना है कि उन्होंने अपने इस अभिनव मत को किन आधारों पर सुस्थिर किया है तथा वे आधार कहाँ तक यथार्थ हैं। डा० जेकोबी एक गम्भीर समीक्षक थे, इसमें कोई सन्देह नहीं। पर किसी भी तथ्य को नाना कसौटियों पर कसते रहना तो किसी भी सत्य-मीमांसक का अपना कार्य है ही।

डा० जेकोबी के लेख का सार

उक्त लेख को आद्योपांत पढ़ जाने से स्पष्ट लगने लगता है कि यह लेख केवल बुद्ध और महावीर की निर्वाण-तिथियों के सम्बन्ध से ही नहीं लिखा गया। लेख का एक प्रमुख ध्येय तात्कालिक राजनैतिक स्थितियों पर भी प्रकाश डालना है। उनके मूल लेख का शीर्षक 'बुद्ध और महावीर का निर्वाण एवं उनके समय की मगध की राजकीय स्थिति' भी यही संकेत करता है। निर्वाण-तिथियों के सम्बन्ध में जितना उन्होंने लिखा है, वह भी विषय को निर्णायक स्थिति तक पहुँचाने के लिए अपर्याप्त ही नहीं, कुछ अस्वाभाविक भी है।

डा० जेकोबी का बुद्ध को बड़े और महावीर को छोटे मानने में प्रमुख प्रमाण यह है कि चेटक, कोणिक (अजातशत्रु) आदि का युद्ध-सम्बन्धी विवरण जितना बौद्ध शास्त्रों में मिलता है, जैन आगमों में उससे आगे का भी मिलता है। बौद्ध शास्त्रों में अजातशत्रु का अमात्य वस्सकार बुद्ध के पास वज्जियों के विजय की योजना ही प्रस्तुत करता है, तो जैन आगमों में चेटक और कोणिक

---

१. श्रमण, वर्ष १३, अंक ६, पृ० ९-१०

के महाशिलाकंटक और रथमूसल संग्राम व वैशाली-प्राकार-भंग तक का स्पष्ट विवरण मिलता है। उनका कहना है: "इससे यही प्रमाणित होता है कि महावीर बुद्ध के बाद कितने ही (सम्भवतः ७ वर्ष) अधिक वर्ष जीवित रहे थे।"[1]

शास्त्र-संग्राहकों ने तात्कालिक स्थितियों का कितना-कितना अंश शास्त्रों में संगृहीत किया, यह उनके चुनाव और उनकी अपेक्षाओं पर आधारित था। यदि ऐसा हुआ भी हो कि बौद्ध संग्राहकों की अपेक्षा जैन संग्राहकों ने कुछ अधिक या परिपूर्ण संकलन किया हो, तो भी वह इस बात का प्रमाण नहीं बन जाता कि महावीर बुद्ध के बाद भी कुछ वर्ष तक जीवित रहे थे, इसीलिए ऐसा हुआ है।

बौद्ध पिटकों में अजातशत्रु

जैन शास्त्रों में कोणिक-सम्बन्धी संस्मरण कुछ अधिक भी संगृहीत हैं। इसका कारण यह भी हो सकता है कि उसका अधिक सम्बन्ध जैन धर्म से ही रहा है। प्रो० राइस डेविड्स (Rhys Davids) के मतानुसार तो त्रिपिटकों में अजातशत्रु-सम्बन्धी चाहे कितना ही वर्णन हो, उससे यही प्रमाणित होता है कि वह बौद्ध धर्म का हितैषी-मात्र ही था, अनुयायी नहीं। अजातशत्रु भगवान् बुद्ध से मिला और उसने श्रामण्यफल पूछा।[2] उस चर्चा के उपसंहार में राइस डेविड्स लिखते हैं: "बातचीत के अन्त में अजातशत्रु ने बुद्ध को स्पष्टतया अपना मार्ग-दर्शक स्वीकार किया और पितृ-हत्या का पश्चात्ताप व्यक्त किया। किन्तु यह असंदिग्धतया व्यक्त किया गया है कि उसका धर्म-परिवर्तन नहीं किया गया। इस विषय में एक भी प्रमाण नहीं है कि उस हृदयस्पर्शी प्रसंग के पश्चात् भी वह बुद्ध की मान्यताओं का अनुसरण करता रहा हो। जहाँ तक मैं जान पाया हूँ, उसके बाद उसने बुद्ध के अथवा बौद्ध संघ के अन्य किसी भिक्षु के न तो कभी दर्शन किए और न उनके साथ धर्म-चर्चा ही की, और न मेरे ध्यान में यह भी आता है कि उसने बुद्ध के जीवन-काल में भिक्षु-संघ को कभी आर्थिक सहयोग भी दिया हो।

---

१. श्रमण, वर्ष १३, अंक ७, पृ० ३५

२. दीघनिकाय, सामञ्ञफल सुत्त, १।२

"इतना तो अवश्य मिलता है कि बुद्ध-निर्वाण के पश्चात् उसने बुद्ध की अस्थियों की माँग की, पर वह भी यह कहकर कि 'मैं भी बुद्ध की तरह एक क्षत्रिय ही हूँ' और उन अस्थियों पर उसने फिर एक स्तूप बनवाया। दूसरी बात—उत्तरवर्ती ग्रन्थ यह बताते हैं कि बुद्ध-निर्वाण के तत्काल बाद ही जब राजगृह में प्रथम संगीति हुई, तब अजातशत्रु ने सप्तपर्णी गुफा के द्वार पर एक सभा-भवन बनवाया था, जहाँ बौद्ध पिटकों का संकलन हुआ; पर इस बात का बौद्ध धर्म के प्राचीनतम और मौलिक शास्त्रों में लेशमात्र भी उल्लेख नहीं है। इस प्रकार बहुत सम्भव है कि उसने बौद्ध धर्म को बिना स्वीकार किए ही उसके प्रति सहानुभूति दिखाई हो। यह सब केवल उसने भारतीय राजाओं की उस प्राचीन परम्परा के अनुसार ही किया हो, ऐसा लगता है। क्योंकि सब धर्मों का संरक्षण राजा का कर्त्तव्य होता है।"[१] डा० राधाकुमुद मुखर्जी ने भी श्रामण्यफल-सूत्र के

---

१. At the close of discourse the king is stated to have openly taken the Buddha as his guide in future, and to have given expression to the remorse he felt at the murder of his father. But it is also distinctly stated that he was not converted. There is no evidence that he really, after the moment, when his heart was touched, continued to follow the Buddha's teachings. He, never, so far we know, waited again either upon the Buddha or upon any member of the order, to discuss ethical matters, and we hear of no material support given by him to the order during the Buddha's life time.

We are told, however, that after the Buddha's death he asked (on the ground that he, like the Buddha, was kshatriya) for a portion of the relics; that he obtained them, and built a stūpa or burial mound over them, and though the oldest authority says nothing about it, younger works state that on the convocation of the first council at Rajagriha, shortly after the decease, it was the king who provided and prepared that hall at the entrance to the

आधार पर यही प्रमाणित किया है कि अजातशत्रु बौद्ध धर्म का समर्थक-मात्र था, अनुयायी नहीं।[1]

जैन परम्परा में कोणिक

जैन परम्परा के अनुसार तो राजा कोणिक भगवान् महावीर का परम अनुयायी भक्त था। उसने एक 'प्रवृत्ति-वादुक' पुरुष की नियुक्ति केवल इसीलिए कर रखी थी कि वह प्रतिदिन भगवान् महावीर की चर्या के संवाद उसे देता रहे। उस पुरुष के नीचे अनेक कर्मकर थे। उनके माध्यम से भगवान् महावीर की चर्या का संवाद उस अधिकारी पुरुष के पास आता और वह प्रवृत्ति-वादुक पुरुष कोणिक को यह संवाद निवेदित करता था।[2] राजा कोणिक अपनी राज्य-सभा में भगवान् महावीर के चम्पा के उपनगर में आने के समाचार पाते ही अत्यन्त प्रसन्नमना होकर सिंहासन छोड़कर सात-आठ कदम आगे बढ़ता है[3] और उत्त-

---

Saptaparni cave, where the rehearsal of the doctrine took place. He may well have showed favour to the Buddhists without at all belonging to their party. He would only, in so doing, be following the usual habit so characteristic of Indian monarchs of patronage towards all schools.

—*Buddhist India*, pp. 15-16

१. हिन्दू सभ्यता, पृ० १९१

२. तस्सणं कोणियस्स एक्के पुरिसे विउलकए वित्तिए भगवउ पवित्तिवाउए, भगवउ तद्देवसियं पवित्ति णिवेइ। तस्सणं पुरिसस्स वहवे अणेगपुरिसा दिणभत्ति भत्तवेयणा भगवतो पवित्तिवाउय भगवतो तद्देवसियं पवित्ति निवेदंति।

—औपपातिक सूत्र, समवसरण अधिकार, १०

३. तेणं कालेणं तेणं समएणं कोणिए राया भंभसारपुत्ते वाहरीया उवट्ठाण-सालाए अणेग गणनायक, दंडनायग,······सद्धिं संपरिवुडे विहरइ। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भयवं महावीरे·······सुहुसुहे विहरमाणे, चंपाएणयरिए वहिया उवणगरगामं उवागए। चंपाणगरी पुण्णभद्दचेइयं

रासंगपूर्वक[1] भगवान् की दिशा में 'णमोत्थुणं'[2] बोलते हुए वह कहता है, "मेरी आत्मा में धर्म के आदिकर्त्ता, मेरे धर्मोपदेशक तत्रस्थित भगवान् महावीर को मैं यहीं से वन्दन-नमस्कार करता हूँ।"[3] उस के बाद भगवान् महावीर के चम्पा में पधारने पर कोणिक भगवान् महावीर के समवशरण में भी उपस्थित हुआ।[4]

समोसरिओकामे। तत्तेणं से पवित्तिवाउए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे ··· चंपाणयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव कोणियस्सरण्णो गिहे ······ जेणेव कोणियराय भंभसारपुत्ते तेणेव उवागच्छति, उवागच्छिता ····· एवं वयासी—जस्सणं देवाणुप्पिया दंसणं कंखंति, जस्सणं देवाणुप्पिया दंसणं पत्थंति, जस्सणं देवा० दंसणं अभिलसंति, जस्सणं देवा० णामगोत्तस्सवि सवणत्ताए हट्ठतुट्ठ जाव हियया भवंति सेणं समणे भगवं महावीरे ··· ··· चंपाएनगरीए उवणगरगामं उवागए, चंपानगरी पुण्णभद्दचेइए समोसरिआकामे। तएणं देवाणुप्पियाण पीयट्ठायाए पियणिवेदेमि पियंभे भवओ। तत्तेणं से कोणिएराया भंभसारपुत्ते तस्स पवित्तिवाउयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठे जाव हियए ····· सिंहासणाओ अब्भुट्ठेइ, ······ एग साडिय उत्तरासगं करेई ··· ·· अंजलि मउलिय हत्थे तित्थयराभिमुहे, सत्तट्ठ पयाई अणुगच्छत्ति ··· ···तिकट्टु एवं वयासी—णमोत्थुणं अरिहंताणं · ······· संपत्ताणं।

—औपपातिक सूत्र, समवसरण अधिकार, ११ से १८

१. उत्तरासंगपूर्वक वंदन करने का अर्थ होता है—जो बीच में सींया हुआ न हो, ऐसे एक पट वस्त्र—साड़ी का मुख की यतना करने के लिए लगाना। यह जैन श्रावक की वंदन-विधि का लक्षण है।

२. 'णमोत्थुणं' में जिसको सक्कथुई (शक्रस्तुति) कहा जाता है, तीर्थंकर की स्तुति है। यह भी बताता है—कोणिक जैन था।

३. णमोत्थुणं समणस्स भयवओ महावीरस्स आदिकरस्स, तित्थकरस्स जाव संपाविओकामस्स, ममधम्माइगरस्स धम्मोवदेसगस्स वंदामीणं भगवं तत्थगयं इहगते पासउमे भगवं तत्थगए इहगयं तिकट्टु, वंदंति णमंसंति।

—औपपातिक सूत्र, समवसरण अधिकार, १८

४. वही, समवसरण अधिकार, १०२ से १३७

भगवान् महावीर के बाद सुधर्मा स्वामी की परिषद् में भी वह सभक्ति उपस्थित हुआ।[1]

इन प्रसंगों से यह स्पष्ट विदित होता है कि कोणिक भगवान् महावीर का और जैन धर्म का अनुयायी था। राईस डेविड्स ने लिखा है—अजातशत्रु केवल एक ही बार बुद्ध के सम्पर्क में आया[2] और उसके बाद अन्य बौद्ध भिक्षुओं के सम्पर्क का कोई भी उल्लेख नहीं मिलता;[3] किन्तु जैसा कि बताया गया, जैन परम्परा के अनुसार तो कोणिक भगवान् महावीर के उत्तराधिकारी सुधर्मास्वामी की धर्मसभा में भी उपस्थित होता है और नाना प्रश्न पूछता है। अत: डा० जेकोबी के मतानुसार यदि जैन आगम कोणिक-सम्बन्धी विवरणों पर अधिक प्रकाश डालते हैं, तो उसका स्वाभाविक और संगत कारण यह है कि कोणिक जैन धर्म का वरिष्ठ अनुयायी रहा है।[4]

डा० जेकोबी ने तो अर्थान्तर से ही यह अनुमान बाँधा है, जब कि बौद्ध शास्त्रों में 'बुद्ध से पूर्व महावीर का निर्वाण हुआ', ऐसे अनेकों स्पष्ट और ज्वलन्त उल्लेख मिलते हैं और जैन आगमों में बुद्ध की मृत्यु का कहीं नामोल्लेख ही नहीं मिलता। ऐसी परिस्थिति में स्वाभाविक निष्कर्ष तो यह होता है कि जैन शास्त्र बुद्ध की मृत्यु के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं देते और बौद्ध शास्त्र 'भगवान् महावीर की मृत्यु भगवान् बुद्ध की मृत्यु से पूर्व हुई', ऐसा स्पष्ट उल्लेख देते हैं, तो महावीर पूर्व-निर्वाण-प्राप्त और बुद्ध पश्चात्-निर्वाण-प्राप्त थे।

डा० जेकोबी के लेख में सबसे लचीली बात तो यह है कि उन्होंने अपने दुरान्वयी अर्थ को सुस्थिर रखने के लिए महावीर के पूर्व-निर्वाण-सम्बन्धी बौद्ध

---

१. परिशिष्टपर्व, सर्ग ४, श्लोक १५–५४

२. When the king of Magadha, the famous (and infamous) Ajatasattu, made his only call upon the Buddha, he...
Buddhist India, p. 88

३. *Buddhist India*, p. 15

४. विस्तार के लिए देखें, लेखक की अन्य कृति 'आगम और त्रिपिटक: एक अनुशीलन' में 'अनुयायी राजा' प्रकरण के अन्तर्गत अजातशत्रु (कोणिक)

शास्त्रों में मिलने वाले तीन प्रकरणों[1] को अयथार्थ प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है। उनका कहना है—ये प्रकरण भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न प्रकार से मिलते हैं; अतः ये अयथार्थ हैं। साथ-साथ वे यह भी कहते हैं—इन तीनों प्रकरणों के भिन्न होते हुए भी तीनों का उद्देश्य तो एक ही है कि महावीर के निर्वाण-प्रसंग को लक्ष्य कर अपने भिक्षु-संघ को एकता और प्रेम का संदेश देना।

ध्यान देने की बात यह है कि उक्त तीनों प्रकरणों की भूमिका यत्किंचित् भिन्न भले ही हो, पर महावीर के निर्वाण-विषय में तीनों ही प्रकरण सर्वथा एक ही बात कहते हैं। भूमिकाएँ शास्त्र-संग्राहक किसी भी शैली से गढ़ सकते हैं, पर जीवित महावीर को भी वे निर्वाण-प्राप्त महावीर कह सकते हैं, यह सोचना सर्वथा असंगत होगा।

महावीर का निर्वाण किस पावा में ?

डा० जेकोवी ने इस सम्बन्ध में एक अन्य तर्क भी उपस्थित किया है कि बौद्ध शास्त्रों में महावीर का निर्वाण जिस पावा में कहा है, वह पावा शाक्य भूमि में थी और वहाँ बुद्ध ने अन्तिम दिनों में प्रवास किया था; जब कि जैनों की पारम्परिक मान्यता के अनुसार महावीर का निर्वाण पटना जिले के अंतर्गत राजगृही के समीपस्थ पावा में हुआ था। अतः जिस प्रकार पावा काल्पनिक है, उसी तरह महावीर के निर्वाण की बात भी काल्पनिक हो सकती है। डा० जेकोबी का यह भी कहना है : "महावीर के मृत्यु-स्थान-विषयक जैनों की परम्परा के विषय में शंका करना उचित नहीं है।"

बौद्धों ने जिस पावा का उल्लेख किया है, मान लें कि नाम-साम्य के कारण उन्होंने वह भूल कर दी। ऐसी भूलों का होना असम्भव नहीं है। पर इसका तात्पर्य यह नहीं होता कि निर्वाण की बात ही सारी मनगढ़ंत है। वस्तु-स्थिति तो यह है कि डा० जेकोवी ने जैन-परम्परा में मान्य जिस पावा के विषय में शंका उपस्थित करने की भी वर्जना की है, ऐतिहासिक आधारों पर

---

१. विस्तृत समीक्षा के लिए देखें, अनुसंधान और निष्कर्ष के अन्तर्गत 'निर्वाण-प्रसंग'।

वह शंकास्पद ही नहीं, निराधार ही बन जाने लगी है। परम्परा और इतिहास में बहुधा आकाश-पाताल का अन्तर पड़ जाता है। महावीर का जन्म-स्थान भी परम्परागत रूप से लिछूआड़ के निकटस्थ क्षत्रिय-कुण्ड माना जाता है। पर वर्तमान इतिहास की शोध ने उसे नितान्त अप्रमाणित कर दिया है। ऐतिहासिक धारणा के अनुसार तो महावीर का जन्म-स्थान पटना से २७ मील उत्तर में मुजफ़्फ़रपुर जिले का बसाढ़ ही क्षत्रिय कुण्डपुर है। इस प्रकार परम्परागत स्थान गंगा में सुदूर दक्षिण की ओर है, जब कि इतिहास-सम्मत स्थान गंगा के उत्तरी अंचल में है। पावा के सम्बन्ध में भी लगभग यही बात है। परम्परा-सम्मत पावा दक्षिण बिहार में है और वहाँ के भव्य मन्दिरों ने उसे एक जैन तीर्थ बना दिया है। इतिहास इस बात में सम्मत नहीं है कि वह पावा यहाँ हो। भगवान् महावीर के निर्वाण -अवसर पर मल्लों और लिच्छवियों के अठारह गणराजा उपस्थित थे।[1] ऐसा उत्तरी बिहार में स्थित पावा में अधिक सम्भव हो सकता है; क्योंकि उधर ही उन लोगों का राज्य था। दक्षिण बिहार की पावा तो नितान्त उनके शत्रु-प्रदेश में थी। अपने ज्वलन्त शत्रु मागधों के प्रदेश में वे कैसे उपस्थित हो सकते थे? पं० राहुल सांकृत्यायन भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। उनका कहना है—"भगवान् महावीर का निर्वाण वस्तुतः गंगा के उत्तरी अंचल में आई हुई पावा में ही हुआ था, जोकि वर्तमान में गोरखपुर जिले के अन्तर्गत 'पपहुर' नामक ग्राम है। जैन लोगों ने प्राचीन परम्परा को भूलकर पटना जिलान्तर्गत पावा को अपना लिया है।"[2] और भी अनेक इतिहासज्ञ इस धारणा से सहमत हैं।[3]

तात्पर्य हुआ, डा० जेकोबी जिस पावा के आधार पर निर्वाण-सम्बन्धी प्रकरणों को अयथार्थ मानते हैं, वही पावा इतिहास-सम्मत होकर उन निर्वाण-सम्बन्धी प्रकरणों की सत्यता को और पुष्ट कर देती है।

---

१. कल्पसूत्र, १२८
२. दर्शन-दिग्दर्शन, पृ० ४४४, टि० ३
३. श्री नाथूराम प्रेमी ने भी ऐसी ही सम्मभावना व्यक्त की है। देखें, जैन साहित्य और इतिहास, पृ० १८६

तात्कालिक स्थितियों के सम्बन्ध में आगम-त्रिपिटक

डा० जेकोबी का यह कथन भी पूर्ण यथार्थ नहीं है कि जैन आगम त्रिपिटकों की अपेक्षा तात्कालिक स्थितियों का अधिक विवरण प्रस्तुत करते हैं। इस अभिमत की पुष्टि के लिए उन्होंने अपने लेख में जो-जो प्रसंग प्रस्तुत किए हैं, वे भी तो सबके सब आगमोक्त नहीं हैं। महाशिलाकंटक संग्राम और रथमूसल संग्राम के बाद 'वैशाली की विजय'[1] का जो प्रकरण है, जिसमें कूलवालय भिक्षु वैशाली-प्राकार-भंग का निमित्त बनता है; वह सारा वर्णन डा० जेकोबी ने भी स्वयं आवश्यक कथा से उद्धृत किया है। आगम और त्रिपिटक मौलिक शास्त्र हैं। इन दोनों में तो तात्कालिक विवरणों का कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं पाया जा रहा है। इतर ग्रंथों में तो जैसे जैन परम्परा में अनेक विवरण उपलब्ध होते हैं, वैसे बौद्ध परम्परा के महावंश आदि ग्रन्थों में भी तो होते हैं। महावंश में तो अशोक तक के राजाओं का काल-क्रम दिया गया है।[2] इतने मात्र का अर्थ यह थोड़ा ही हो जाता है कि बुद्ध महावीर के पश्चात् निर्वाण-प्राप्त हुए थे।

महावीर की निर्वाण-तिथि

डा० जेकोबी ने महावीर का निर्वाण ई० पू० ४७७ और बुद्ध का निर्वाण ई० पू० ४८४ माना है। पर इन्होंने अपने सारे लेख में यह बतलाने का विशेष प्रयत्न नहीं किया कि ये ही तिथियाँ मानी जाएँ, ऐसी अनिवार्यता क्यों पैदा हुई? केवल उन्होंने बताया है: "जैनों की सर्वमान्य परम्परा के अनुसार चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक महावीर की मृत्यु के २१५ वर्ष बाद हुआ था। परन्तु हेमचन्द्र के मत (परिशिष्ट पर्व, ८-३३९) के अनुसार यह राज्याभिषेक महावीर-निर्वाण के १५५ वर्ष बाद हुआ।"[3] इसी बात को उन्होंने भद्रेश्वर के कहावली नामक ग्रन्थ से पुष्ट किया है। परन्तु वस्तु-स्थिति यह है—जैसा जेकोबी ने भी स्वीकार किया है, सर्वमान्य परम्परा के अनुसार तो

---

१. श्रमण, वर्ष १३, अंक ७-८, पृ० ३४
२. महावंश, परिच्छेद ४, ५
३. श्रमण, वर्ष १३, अंक ६, पृ० १०

चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक महावीर-निर्वाण के २१५ वर्ष बाद ही माना जाता है। आचार्य हेमचन्द्र ने उस प्रसंग को महावीर-निर्वाण के १५५ वर्ष बाद माना है।[1] किन्तु यह बात इतिहास की कसौटी पर टिकने वाली नहीं है। विद्वानों ने इसे हेमचन्द्राचार्य की ही भूल माना है। इस विषय में सर्वाधिक पुष्ट धारणा यह है कि महावीर जिस दिन निर्वाण-प्राप्त होते हैं, उसी दिन उज्जैनी में पालक राजा राजगद्दी पर बैठता है। उसका (या उसके वंश का) ६० वर्ष तक राज्य चलता है। उसके बाद १५५ वर्ष तक नन्दों का राज्य रहता है। तत्पश्चात् मौर्य-राज्य का प्रारम्भ होता है।[2] अर्थात् महावीर-निर्वाण के २१५ वर्ष बाद चन्द्रगुप्त मौर्य गद्दी पर बैठता है।[3] यह प्रकरण तित्थोगाली पइन्नय का है, जोकि परिशिष्ट पर्व तथा भद्रेश्वर की कहावली, इन दोनों ग्रन्थों से बहुत प्राचीन माना जाता है।

लगता है, हेमचन्द्राचार्य के परिशिष्ट पर्व की गणना में पालक-राज्य के ६० वर्ष छूट ही गए हैं। श्री पूर्णचन्द्र नाहर तथा श्री कृष्णचन्द्र घोष लिखते हैं : "महावीर के बाद पालक राजा ने ६० वर्ष राज्य किया था। लगता है, असावधानी से हेमचन्द्राचार्य उस अवधि को जोड़ना भूल गए।"[4]

---

१. एवं च श्रीमहावीरमुक्तेर्वर्षशते गते।
पंचपंचाशदधिके चन्द्रगुप्तो भवेन्नृपः॥
—परिशिष्ट पर्व सर्ग ८, श्लोक ३३९

२. जं रयणिं सिद्धिगओ अरहा तित्थंकरो महावीरो।
तं रयणिमवंतिए, अभिसित्तो पालओ राया॥
पालगरण्णो सट्ठी, पण पणसयं वियाणि णंदाणम्।
मुरियाणं सट्ठिसयं तीसा पुण पूसमित्ताणं॥
—तित्थोगाली पइन्नय, ६२०-२१

३. विस्तार के लिए देखें, 'काल गणना' प्रकरण

४. Hemachandra must have omitted by oversight to count the period of 60 years of king Palaka after Mahāvīra.
—*Epitome of Jainism*, Appendix A, p. IV

डा० जेकोबी ने परिशिष्ट पर्व का सम्पादन किया है[1] उन्होंने भी अपनी भूमिका में बताया है कि यह रचना हेमचन्द्राचार्य ने बहुत ही शीघ्रता में की है तथा इसमें अनेक स्थानों पर असावधानी रही है। उस भूमिका में जेकोबी ने इस विषय पर विस्तृत रूप से लिखते हुए साहित्य और व्याकरण की भी नाना भूलें सप्रमाण उद्धृत की हैं। बहुत सम्भव है, जिस कथन (श्लोक ३३९) के आधार पर जेकोबी ने महावीर-निर्वाण के समय को निश्चित किया है, उसमें भी वैसी ही असावधानी रही हो।

हेमचन्द्राचार्य ने स्वयं अपने समकालीन राजा कुमारपाल का काल बताते समय महावीर-निर्वाण का जो समय माना है, वह ई० पू० ५२७ का ही है; न कि ई०पू० ४७७ का। हेमचन्द्राचार्य लिखते हैं, "जब भगवान् महावीर के निर्वाण से सोलह सौ उनहत्तर वर्ष बीतेंगे, तब चौलुक्य कुल में चन्द्रमा के समान राजा कुमारपाल होगा।"[2] अब यह निर्विवाद रूप से माना जाता है कि राजा कुमारपाल ई० सन् ११४३ में हुआ।[3] हेमचन्द्राचार्य के कथन से यह काल महावीर-निर्वाण के १६६९ वर्ष का है। इस प्रकार हेमचन्द्राचार्य ने भी महावीर-निर्वाण-काल १६६९-११४२=ई० पू० ५२७ ही माना है।

बुद्ध की निर्वाण-तिथि

डा० जेकोबी ने बुद्ध का निर्वाण ई० पू० ४८४ में माना है। उसका आधार उन्होंने यह बताया है : "दक्षिण के बौद्ध कहते हैं, चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक बुद्ध-निर्वाण के १६२ वर्ष पश्चात् हुआ और चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण

---

१. एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित

२. अस्मिन्निर्वाणतो वर्षशत्या(ता)न्यमय षोडश।
नवषष्टिश्च यास्यन्ति यदा तत्र पुरे तदा॥
कुमारपालभूपालो चौलुक्यकुलचन्द्रमाः।
भविष्यति महाबाहुः प्रचण्डाखण्डशासनः॥
—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्रम्, पर्व १०, सर्ग० १२, श्लोक ४५-४६

३. *An Advanced History of India*, by R. C. Majumdar, H. C. Raychoudhury, K. K. Datta, p. 202

का सर्वसम्मत समय ई० पू० ३२२ है; अतः बुद्ध-निर्वाण ई० पू० ४८४ ठहरता है।"

डा० जेकोबी ने दक्षिण के बौद्धों की परम्परा का उल्लेख कर चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण का जो तथ्य पकड़ा है, वह महावंश का है।[1] उसी महावंश में

---

१. अजातसत्तुपुत्तो तं, घातेत्वादायभद्दको।
रज्जं सोलसवस्सानि, कारेसि मित्तदूभिको ॥१॥
उदयभद्दपुत्तो तं, घातेत्वा अनुरुद्धको।
अनुरुद्धस्स पुत्तो तं, घातेत्वा मुण्डनामको ॥२॥
मितद्दुनो दुम्मतिनो, ते पि रज्जं अकारयुं।
तेसं उभिन्नं रज्जेसु, अट्ठवस्सानतिक्कमुं ॥३॥
मुण्डस्स पुत्तो पितरं, घातेत्वा नागदासको।
चतुवीसति वस्सानि, रज्जं कारेसि पापको ॥४॥
पितुघातकवंसोयं, इति कुद्धाथ नागरा।
नागदासकराजानं, अपनेत्वा समागता ॥५॥
सुसुनागोति पञ्ञातं, अमच्चं साधु संमतं।
रज्जे समभिसिञ्चिसुं सब्बेसिं हितमानसा ॥६॥
सो अट्ठारस वस्सानि, राजा रज्जं अकारयि।
कालासोको तस्स पुत्तो, अट्ठवीसति कारयि ॥७॥
अतीते दसमे वस्से, कालासोकस्स राजिनो।
संबुद्ध परिनिब्बाणा, एवं वस्ससतं अहु ॥८॥
—महावंश, परिच्छेद ४

कालासोकस्स पुत्ता तु, अहेसुं दस भातुका।
द्वावीसति ते वस्सानि, रज्ज समनुसासिसुं ॥१४॥
नव नंदाततो आसुं, कमेनेव नराधिपा।
तेपि द्वावीस वस्सानि, रज्जं समनुसासिसुं ॥१५॥
मोरियाणं खत्तियाणं, वंसे जातं सिरीधरं।
चंदगुत्तोति पञ्ञातं, चाणक्को ब्राह्मणो ततो ॥१६॥
नवमं घननंदं तं, घातेत्वा चंडकोधवा।
सकले जंबुदीपंस्मि, रज्जे समभिसिञ्चिसो ॥१७॥
—महावंश, परिच्छेद ५

एक ओर जहाँ यह कहा गया है कि चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण बुद्ध-निर्वाण के १६२ वर्ष बाद हुआ, वहाँ उस ग्रन्थ का एक अन्य उल्लेख यह है कि बुद्ध का निर्वाण ई० पू० ५४३ में हुआ[1], जिसे डा० जेकोबी ने भी अपने लेख में बुद्ध-निर्वाण का प्रसिद्ध परम्परा-मान्य समय कहा है।[2] अब यदि महावंश में बुद्ध-निर्वाण का समय ई० पू० ५४३ मानकर उसके १६२ वर्ष पश्चात् चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण माना है, तो चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण का समय ई०पू० ३८१ का आता है। पर इसकी, चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण की जो सर्वसम्मत ऐतिहासिक तिथि (ई० पू० ३२२) है, उसके साथ कोई संगति नहीं बैठती। अत: यह स्पष्ट हो जाता है कि महावंश के इस संदिग्ध प्रमाण को मानकर डा० जेकोबी ने बुद्ध-निर्वाण का जो समय माना है, वह संगत नहीं है।[3]

असंगतियाँ

डा० जेकोबी द्वारा निर्णीत भगवान् महावीर और बुद्ध की निर्वाण-तिथियों को मानकर चलने में कुछ अन्य असंगतियाँ भी पैदा होती हैं। भगवती सूत्र में गोशालक ने अपनी अन्तिम अवस्था में आठ चरमों का निरूपण किया

---

१. "The event happenned in 544 B. C. according to a Ceylonese Reckoning."

—*Political History of Ancient India*, by H.C. Raychoudhury, p. 225

सिलोनीगाथा महावंश के अनुसार गौतम बुद्ध का निर्वाण ई० पू० ५४४ में हुआ।

—भारत का वृहत् इतिहास, प्रथम भाग, प्राचीन भारत, ले० प्रो० श्रीनेत्र पाण्डेय, चतुर्थ संस्करण, पृ० २४३

२. श्रमण, वर्ष १३, अंक ६, पृ० १०

३. सामान्य रूप से भी महावंश की राज्यत्व-कालगणना ऐतिहासिक कसौटी पर भूलभरी प्रमाणित होती है, जिसकी विशेष चर्चा इसी पुस्तक के 'काल-गणना' प्रकरण में की गई है।

हैं, उनमें एक चरम महाशिलाकंटक-युद्ध भी है।[1] इससे विदित होता है कि गोशालक का निधन इस महाशिलाकंटक युद्ध के बाद हुआ। गोशालक की मृत्यु के ७ दिन पूर्व भगवान् महावीर कहते हैं: "मैं अब से १६ वर्ष तक गन्धहस्ती की तरह निर्बाध रूप में जीऊँगा।"[2] तात्पर्य यह होता है कि कोणिक के राज्यारोहण के तुरन्त बाद ही यदि महाशिलाकंटक युद्ध हुआ हो, तो भी भगवान् महावीर और कोणिक के राज्यारोहण के बीच कम-से-कम १७ वर्ष का अन्तर पड़ता है। किन्तु जेकोबी द्वारा अभिमत तिथियों के अनुसार तो वह अन्तर १५ वर्ष से अधिक हो ही नहीं सकता।[3]

दूसरी असंगति यह है—श्रेणिक भगवान् महावीर से प्रश्न पूछता है: "भगवन्! अन्तिम केवली कौन होगा?" भगवान् उत्तर देते हैं—"आज से सातवें दिन ऋषभदत्त की भार्या के उदर में विद्युन्माली नामक देव आयेगा और वह आगे चलकर जम्बू नामक अन्तिम केवली होगा।"[4] जम्बू स्वामी की सर्व

---

१. तस्सविण वज्जस्स पच्छाणट्ठाए इमाइं अट्ठ चरमाइं पण्णवेइ, तं जहा—चरिमे पाणे, चरिमे गेये, चरिमे णट्टे, चरिमे अंजलिकम्मे, चरिमे पोक्खलस्स संवट्टए महामेहे, चरिमे सेयणए गंधहत्थि, चरिमे महासिला-कंटए संगामे।
—भगवती सूत्र, शतक १५

२. तएणं समणे भगवं महावीरे गोसालं मंखलीपुत्तं एवं वयासी—णो खलु अहं गोसाला! तव तवेण तेएणं अणाइट्ठे समाणे अंतो छण्हं मासाणं जावकालं करिस्सामि। अहं णं अण्णाइं सोलसवासाइं जिणे सुहत्थी विहरिस्सामि।
—भगवती सूत्र, शतक १५

३. डा० जेकोबी ने कोणिक के राज्यारोहण के ८वें वर्ष में बुद्ध का निर्वाण माना है (श्रमण, वर्ष १३, अंक ७, पृ० २६) तथा महावीर का निर्वाण बुद्ध से ७ वर्ष बाद माना है।

४. पुनर्विज्ञपयामास जिनेन्द्रं मगधाधिपः।
भगवन्केवलज्ञानं कस्मिन्व्युच्छेदमेष्यति ॥२६२॥
नाथोऽप्यकथयत्पश्य विद्युन्माली सुरोह्यसौ।
सामानिको ब्रह्मेन्द्रस्य चतुर्देवीसमावृतः ॥१६३॥

आयु ८० वर्ष की थी ।[1] १६ वर्ष वे गृहस्थावास में रहे। महावीर-निर्वाण के अनन्तर सुधर्मा स्वामी के हाथों उनकी दीक्षा होती है ।[2] इससे राजा श्रेणिक का राज्यान्त और भगवान् महावीर के निर्वाण में लगभग सत्रह वर्ष का अन्तर आता है । डा० जेकोबी द्वारा श्रेणिक-राज्यान्त (कोणिक का राज्यारोहण)और महावीर के निर्वाण में १५ वर्ष से अधिक अन्तर नहीं आ पाता । इस प्रकार इन तिथियों को मान लेने में अनेक आपत्तियाँ हैं।

निष्कर्ष

भगवान् महावीर का निर्वाण ई० पू० ५२७ में हुआ, यह मान्यता लगभग निर्विकल्प और निर्विरोध थी । बुद्ध-निर्वाण का इतना असंदिग्ध काल कोई भी नहीं माना गया था । बुद्ध-निर्वाण के सम्बन्ध में दशों मत बहुत प्राचीन काल में भी प्रचलित थे और अब भी हैं ।[3] डा० जेकोबी ने अपने इस लेख के प्रतिपादन में बुद्ध के निर्वाण-काल (ई० पू० ४८४) को निर्विकल्प

अह्नोऽमुष्मात्सप्तमेऽह्नि च्युत्वा भावी पुरे तव ।
श्रेष्ठिऋषभदत्तस्य जम्बूः पुत्रोऽन्त्यकेवली ॥२६४॥

—परिशिष्ट पर्व, सर्ग १

१. वे १६ वर्ष गृहस्थावास में, २० वर्ष छद्मस्थ-साधु-अवस्था में, तथा ४४ वर्ष केवली-अवस्था में रहे । उनका निर्वाण भगवान् महावीर के ६४ वर्ष बाद हुआ था, अतः उनकी दीक्षा महावीर-निर्वाण के बाद उसी वर्ष में हुई, जिस वर्ष भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ ।

२. सुधर्मस्वामिनः पादानापादम्भोधितारकान् ।
पञ्चांगस्पृष्टभूपीठः स प्रणम्य व्यजिज्ञपत् ॥२८७॥
संसारसागरतरीं प्रव्रज्यां परमेश्वर ।
मम सस्वजनस्यापि देहि धेहि कृपां मयि ॥२८८॥
पञ्चमः श्रीगणधरोऽप्येवमभ्यर्थितस्तदा ।
तस्मै सपरिवाराय ददौ दीक्षां यथाविधि ॥२८९॥

—परिशिष्ट पर्व, सर्ग ३

३. विस्तार के लिए देखें, 'अनुसन्धान और निष्कर्ष' प्रकरण

और सत्य-जैसा मान लिया और भगवान् महावीर के जीवन-प्रसंगों को खींच-तान कर उसके साथ संगत करने का प्रयत्न किया। ऐसा करके डा० जेकोवी ने महावीर और वुद्ध की समसामयिकता में एक नया भूचाल खड़ा कर दिया। डा० जेकोवी की वे धारणाएँ कालमान की दृष्टि से लगभग ३२ वर्ष पुरानी भी हो चुकी हैं। इस अवधि में इतिहास वहुत कुछ नये प्रकार से भी स्पष्ट हुआ है। ऐसी स्थिति में डा० जेकोवी के निर्णयों को ही अन्तिम रूप से मान लेना जरा भी यथार्थ नहीं है।

पं० सुखलालजी व अन्य विद्वान्

डा० जेकोवी के इस मत को वर्तमान के कुछ विचारकों ने भी मान्यता दी है। पं० सुखलाल जी का कहना है: "प्रो० जेकोवी ने वौद्ध और जैन ग्रन्थों की ऐतिहासिक दृष्टि से तुलना करके अन्तिम निष्कर्ष निकाला है कि महावीर का निर्वाण वुद्ध-निर्वाण के पीछे ही अमुक समय के वाद ही हुआ है। जेकोबी ने अपनी गहरी छानवीन से यह स्पष्ट कर दिया है कि वज्जि-लिच्छिवियों का कोणिक के साथ जो युद्ध हुआ था, वह वुद्ध-निर्वाण के वाद और महावीर के जीवन-काल में ही हुआ। वज्जि-लिच्छवीगण का वर्णन तो वुद्ध और जैन दोनों ग्रन्थों में आता है, पर इनके युद्ध का वर्णन वौद्ध ग्रन्थों में नहीं आता, जवकि जैन ग्रन्थों में आता है।"[1]

लगता है, पं० सुखलाल जी ने डा० जेकोवी के मन्तव्यों को ज्यों-का-त्यों माना है। वे स्वतन्त्र रूप से इस विपय की तह में नहीं गए हैं। वहुत वार हम सभी ऐसा करते हैं। जो विपय हमारा नहीं है या किसी विपय की तह में जाने का हमें अवसर नहीं मिला है, तो किसी भी विद्वान् का उस विपय पर लिखा गया लेख हमारी मान्यता पा लेता है। यह अस्वाभाविक-जैसा भी नहीं है। अनेक विपय अनेक-जन-साध्य ही होते हैं और मान्यताओं का पारस्परिक विनिमय होता है।

पण्डितजी ने यहाँ जेकोवी की दो वातों को महत्त्व दिया है। एक तो

१. दर्शन और चिन्तन, द्वितीय खण्ड, पृ० ४७-४८

यह है—वज्जियों और कोणिक के युद्ध का वर्णन बौद्ध शास्त्रों में नहीं है और जैन शास्त्रों में है। प्रस्तुत विषय की निर्णायकता में यह कोई महत्त्वपूर्ण बात नहीं है। इस विषय में पहले बहुत कुछ लिखा जा चुका है। दूसरी बात यह है कि वह युद्ध बुद्ध-निर्वाण के पश्चात् और महावीर-निर्वाण के पूर्व हुआ था। उक्त मान्यता का मूल आधार **महापरिनिव्वाण सुत्त** है, जिसके विषय में सामान्यतया यह कहा जा सकता है कि उसमें बुद्ध के अन्तिम जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन ही है। इसी सुत्त में कोणिक का महामात्य वस्सकार वज्जी के विजय की योजना बुद्ध के समक्ष प्रस्तुत करता है; अतः यह बुद्ध के अन्तिम काल से सम्बन्धित घटना है।

महापरिनिव्वाण सुत्त में अधिकांश घटनाएँ बुद्ध के अन्तिम जीवन से सम्बन्धित हैं, यह समझ में आता है; पर सभी घटनाएँ ऐसी ही हैं, यह यथार्थ नहीं लगता। **महापरिनिव्वाण सुत्त** में तो सारिपुत्र भी बुद्ध से वार्तालाप करते हैं;[1] यह सर्व-सम्मत तथ्य है कि भगवान् बुद्ध से बहुत पूर्व ही सारिपुत्र का देहावसान हो चुका था।[2]

सम्भव स्थिति तो यह है कि महाशिलाकंटक और रथमूसल संग्राम के हो जाने के बहुत समय पश्चात् जो वैशाली-प्राकार-भंग का विषय अधूरा पड़ा था और कोणिक व उसके सेनापति आदि प्राकार-भंग की नाना योजनाएँ सोच रहे थे, वस्सकार तब भगवान् बुद्ध से मिला था।

यह धारणा इससे भी पुष्ट होती है कि जैन परम्परा के अनुसार भी प्राकार-भंग छद्म-विधि से किया जाता है और बुद्ध के मुख से वज्जियों की दुर्जयता सुनकर वस्सकार भी किसी छद्म-विधि को अपनाने की बात सोचता है। इस प्रकार अनेकों कारण मिलते हैं, जिनसे यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है

---

१. दीघ निकाय, महापरिनिव्वाण सुत्त

२. राहुल सांकृत्यायन ने सारिपुत्त की घटना का वहाँ होना शास्त्र-संग्राहकों की भूल माना है। (देखें, बुद्धचर्या, पृ० ५२५) यदि वह वहाँ भूल से ही संकलित होती है, तो क्या 'वस्सकार की घटना' भी वहाँ भूल से ही संकलित नहीं हो सकती ?

कि डा० जेकोबी का यह आग्रह, कि युद्ध बुद्ध-निर्वाण के पश्चात् ही हुआ था, वास्तविक नहीं है।

पं० सुखलालजी की तरह श्री गोपालदास पटेल[1] व श्री किस्तूरमलजी बाँठिया[2] आदि विचारकों ने भी डा० जेकोबी के मत को दृढ़तापूर्वक माना है, पर उसका एकमात्र कारण डा० जेकोबी के प्रमाणों का ही एकपक्षीय अवलोकन ही है।

डा० शार्पेन्टियर

डा० जेकोबी के प्रथम और द्वितीय समीक्षा-काल के बीच डा० शार्पेन्टियर द्वारा प्रस्तुत पहेली के निष्कर्ष तक पहुँचने का प्रयत्न हुआ। उनका एतद्-विषयक लेख 'इण्डियन एन्टीक्वेरी', सन् १९१४ में प्रकाशित हुआ है। डा० शार्पेन्टियर का निष्कर्ष है कि महावीर बुद्ध से १० वर्ष बाद निर्वाण-प्राप्त हुए। बुद्ध का निर्वाण ई० पू० ४७७ में हुआ और महावीर का निर्वाण ई०पू० ४६७ में। शार्पेन्टियर का यह निष्कर्ष मुख्यतः दो आधारों पर स्थित है—ई० पू० ४७७ में बुद्ध का निर्वाण-काल और महावीर की निर्वाण-भूमि पावा। आज यदि हम उस लेख को पढ़ते हैं तो स्पष्ट समझ में आ जाता है कि इतिहास के क्रमिक विकास में वे दोनों ही आधार सर्वथा बदल चुके हैं। किसी युग में यह एक ऐतिहासिक धारणा मानी जाती थी कि बुद्ध का निर्वाण ई० पू० ४७७ में हुआ, पर आज की ऐतिहासिक धारणाओं में उक्त तिथि का कोई स्थान नहीं रह गया है। शार्पेन्टियर ने महावीर-निर्वाण-सम्बन्धी बौद्ध समुल्लेखों को यह बताकर अयथार्थ माना है कि महावीर का निर्वाण दक्षिण विहार की पावा में हुआ था और बौद्ध पिटक उत्तर बिहार की पावा का उल्लेख करते हैं। सच बात तो यह है कि ऐतिहासिक दृष्टि से सोचने वाले लगभग सभी विद्वान उत्तर

डा० जेकोबी ने अपने अभिमत के समर्थन के लिए अपने लेख में डा० शार्पेन्टियर की कुछेक धारणाओं का उल्लेख किया है। पर उल्लेखनीय बात यह है कि शार्पेन्टियर द्वारा ठहराये गये महावीर और बुद्ध के काल-निर्धारण को डा० जेकोबी ने आंशिक मान्यता भी नहीं दी है। लगता है, शार्पेन्टियर ने अपने लेख-काल में बुद्ध-निर्वाण-काल-सम्बन्धी जो ऐतिहासिक धारणा प्रचलित थी, उसे केन्द्र-विन्दु मानकर अन्य तथ्यों का जोड़-तोड़ विठाया है। डा० जेकोवी की दूसरी समीक्षा इससे सोलह वर्ष वाद होती है। तव तक वुद्ध-निर्वाण-सम्वन्धी ऐतिहासिक धारणा नवीन रूप ले लेती है और डा० जेकोवी उसे अपना लेते हैं। हमें इस वात को नहीं भूलना है कि डा० जेकोवी की दूसरी समीक्षा भी ३२ वर्ष पुरानी हो चुकी है और इस अवधि में महावीर और वुद्ध के निर्वाण से सम्वन्धित नई-नई धारणाएँ सामने आ रही हैं; अतः एतद् विपयक काल-निर्णय में हमें नवीनतम दृष्टिकोणों से ही सोचना अपेक्षित होता है।

: ४ :

डा० के० पी० जायसवाल

जरनल ऑफ बिहार एण्ड ओरिस्सा रिसर्च सोसाइटी के सम्पादक एवं प्रसिद्ध इतिहासकार डा० के० पी० जायसवाल के द्वारा इस दिशा में एक उल्लेखनीय प्रयत्न हुआ है।[1] उन्होंने अपनी समीक्षा में यह माना है कि बौद्ध आगमों में वर्णित महावीर के निर्वाण-प्रसंग ऐतिहासिक निर्धारण में किसी प्रकार उपेक्षा के योग्य नहीं है। सामगाम सुत्त में बुद्ध महावीर निर्वाण के समाचार सुनते हैं और प्रचलित धारणाओं के अनुसार इसके दो वर्ष पश्चात् बुद्ध स्वयं निर्वाण को प्राप्त होते हैं। बौद्धों की दक्षिणी परम्परा के अनुसार बुद्ध-निर्वाण ई० पू० ५४४ में हुआ; अतः महावीर का निर्वाण ई० पू० ५४६ में होता है।

महावीर-निर्वाण और विक्रमादित्य

उन्होंने इसके साथ-साथ 'महावीर के ४७० वर्ष बाद विक्रमादित्य' इस जैन-मान्यता पर भी एक नूतन संगति बिठाने का प्रयत्न किया था। उनका कहना था : "जैन-गणना में भगवान् महावीर के निर्वाण और विक्रम संवत् के बीच ४७० वर्ष का अन्तर माना जाता है; वह वस्तुतः सरस्वती-गच्छ की पट्टावली के लेखानुसार निर्वाण और विक्रम-जन्म के बीच का अन्तर है। विक्रम १८वें वर्ष में राज्यभिषिक्त हुआ और उसी वर्ष से संवत् प्रचलित हुआ। इस प्रकार महावीर-निर्वाण से (४७०+१८=)४८८ वर्ष पर विक्रम-संवत्सर का आरम्भ हुआ, पर जैन-गणना से उक्त १८ वर्ष छूट गये; अतः निर्वाण से ४७० वर्ष पर ही संवत्सर माना जाने लगा, जो स्पष्ट भूल है।"[2]

---

१. *Journal of Bihar and Orissa Research Society*, XIII, pp. 240-246.

२. वही, पृ० २४६

डा० के० पी० जायसवाल

डा० जायसवाल ने महावीर-निर्वाण-सम्बन्धी बौद्ध उल्लेखों की उपेक्षा न करने की जो बात कही, वह वस्तुतः ही न्याय-संगत है। पर सामगाम सुत्त के आधार पर बुद्ध से दो वर्ष पूर्व महावीर का निर्वाण मानना और ४७० में १८ वर्ष जोड़कर महावीर और विक्रम की मध्यवर्ती अवधि निश्चित करना, पुष्ट प्रमाणों पर आधारित नहीं है। इतिहासकारों का कहना है : "यह मान्यता किसी भी प्रामाणिक परम्परा पर आधारित नहीं है। आचार्य मेरुतुंग[1] ने महावीर-निर्वाण और विक्रमादित्य के बीच ४७० वर्ष का अन्तर माना है। वह अन्तर विक्रम के जन्म-काल से नहीं, अपितु शक राज्य की समाप्ति और विक्रम-विजय के काल से है।"[2] इसके अतिरिक्त डा० जायसवाल ने सामगाम सुत्त के आधार पर बुद्ध-निर्वाण से दो वर्ष पूर्व जो महावीर-निर्वाण माना है, वह भी आनुमानिक ही ठहरता है।

डा० राधाकुमुद मुकर्जी ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ Hindu Civilization (हिन्दू सभ्यता)[3] में डा० जायसवाल की तरह ही महावीर की ज्येष्ठता और पूर्व-निर्वाण-प्राप्ति का यौक्तिक समर्थन किया है। उनकी मान्यता में उक्त दोनों तथ्य सर्वथा असंदिग्ध हैं। उनके अपने विवेचन में विशेषता की बात यह है की उन्होंने महावीर की ज्येष्ठता को भी अनेक प्रकारों से मान्यता दी है।[4]

महावीर और बुद्ध के काल-निर्णय में डा० मुकर्जी ने डा० जायसवाल के

---

१. विक्कमरज्जारंभा परओ सिरि वीर निव्वुई भणिया।
सुन्न मुणि वेय जुत्तो विक्कम कालउ जिण कालो॥

—विचारश्रेणी, पृ० ३-४

२. The suggestion can hardly be said to rest on any reliable traidition. Merutunga places the death of the last Jina or Tirthankara 470 years before the end of Saka rule and the victory and not birth of the traditional Vikrama.

An Advanced History of India, by R.C. Majumdar, H.C. Raychoudhuri and K.K. Datta, p, 85

३. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा अनूदित व राजकमल प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित

४. हिन्दू सभ्यता, पृ० २१६, २२३, २२४

मत को अक्षरश: अपनाया है, जिसके अनुसार महावीर का निर्वाण-काल ई० पू० ५४६ और बुद्ध का निर्वाण-काल ई० पू० ५४४ है।[१] इस कालक्रम से महावीर की ज्येष्ठता के निरूपण में विसंवाद (self-contradiction) पैदा हो गया है। महावीर की आयु ७२ वर्ष और बुद्ध की आयु ८० वर्ष थी; अत: इससे बुद्ध महावीर से ८ वर्ष बड़े हो जाते हैं। निष्कर्ष यह है कि डा० मुकर्जी महावीर की ज्येष्ठता और पूर्व-निर्वाण प्राप्ति को मानते हुए भी, उसे काल-क्रम के साथ घटित नहीं कर पाये हैं।

डा० कामताप्रसाद जैन ने भी इसी कालक्रम को अपनाया है, पर उनकी धारणा में बुद्ध ज्येष्ठ और महावीर पूर्व-निर्वाण-प्राप्त हैं।[२] महावीर की ज्येष्ठता के सम्बन्ध में मिलने वाले पिटक-समुल्लेखों को भी उन्होंने घटित करने का प्रयत्न किया है, किन्तु वह स्वाभाविकता से बहुत परे का है। एकआध स्थल को उन्होंने वक्रोक्ति के द्वारा जहाँ घटित करने का प्रयत्न किया है[३], वहाँ अनेक स्थल जो महावीर की ज्येष्ठता के सम्बन्ध में अत्यन्त स्पष्ट हैं[४], उनका कोई समाधान नहीं दिया है। कुल मिलाकर उनका पक्ष यह तो है कि महावीर बुद्ध से पूर्व-निर्वाण-प्राप्त हुए थे।

पुरातत्त्वगवेषक मुनि जिनविजयजी ने भी डा० जायसवाल के मत को मानते हुए महावीर की ज्येष्ठता स्वीकार की है।[५]

धर्मानन्द कौशम्बी

श्री धर्मानन्द कौशम्बी का सुदृढ़ निश्चय है कि बुद्ध तात्कालीन सातों

---

१. हिन्दू सभ्यता, पृ० २२३ (बुद्ध का निर्वाण-काल ई० पू० ५४३ बताया गया है। सिलोनी परम्परा के अनुसार ५४३-५४४ दोनों तिथियों का उल्लेख मिलता है।
२. भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध, पृ० ११४-११५
३. वही, पृ० ११०-११५
४. देखें, 'अनुसन्धान और निष्कर्ष' प्रकरण के अन्तर्गत 'महावीर की ज्येष्ठता'
५. वीर-निर्वाण-संवत् और जैन काल-गणना, भूमिका, पृ० १

धर्माचार्यों में सबसे छोटे थे। प्रारम्भ में उनका संघ भी सबसे छोटा था।[1] काल-क्रम की बात को कौशम्बीजी ने यह कहकर गौण कर दिया है कि "बुद्ध की जन्म-तिथि में कुछ कम या अधिक अन्तर पड़ जाता है, तो भी उससे उनके जीवन-चरित्र में किसी प्रकार का गौणत्व नहीं आ सकता। महत्त्व की बात बुद्ध की जन्म-तिथि नहीं, बल्कि यह है कि उनके जन्म से पहले क्या परिस्थिति थी और उसमें से उन्होंने नवीन धर्म-मार्ग कैसे खोज निकाला।"[2] काल-क्रम को गौण करने का कारण यही है कि इस सम्बन्ध में नाना मतवाद प्रचलित हैं।

डा० हर्नले

हेस्टिंग्ज़ की इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड इथिक्स ग्रन्थ में डा० हर्नले ने भी इस विषय की चर्चा की है। उनकी धारणा के अनुसार बुद्ध का निर्वाण महावीर से ५ वर्ष पश्चात् होता है, तदनुसार बुद्ध का जन्म महावीर से ३ वर्ष पूर्व होता है। यह मानने में डा० हर्नले के आधारभूत तथ्य वे ही हैं, जिन पर प्रस्तुत निबन्ध में यत्र-तत्र चर्चा की जा चुकी है।

१. भगवान् बुद्ध, पृ० ३३, १५५
२. वही, भूमिका, पृ० १२

: ५ :

मुनि कल्याण विजयजी

ई० सन् १९३० में इतिहासविद् मुनि कल्याण विजयजी ने एक विराट प्रयत्न किया है। वीर-निर्वाण-संवत् और जैन काल-गणना नामक उनका एतद्-विषयक ग्रन्थ गवेषकों के लिए एक अनूठा खजाना है। भगवान् महावीर और बुद्ध के निर्वाण-समय के विषय में उन्होंने अपना स्वतंत्र चिन्तन प्रस्तुत किया है। उसका निष्कर्ष है—भगवान् महावीर से बुद्ध १४ वर्ष ५ मास १५ दिन पूर्व निर्वाण प्राप्त हो चुके थे। अर्थात् बुद्ध महावीर से आयु में लगभग २२ वर्ष बड़े थे। इसी तथ्य को काल-गणना में इस प्रकार बाँधा जा सकता है—

बुद्ध का निर्वाण—ई० पू० ५४२ (मई)

महावीर का निर्वाण—ई०पू०५२८ (नवम्बर)[1]

उन्होंने भगवान् महावीर का निर्वाण ई०पू० ५२७ माना है। यह परम्परा-सम्मत भी है और प्रमाण-सम्मत भी। मुनि कल्याण विजयजी ने इसी निर्वाण-संवत् को और भी विभिन्न युक्तियों और प्रमाणों से पुष्ट किया है। उन्होंने बुद्ध का निर्वाण महावीर-निर्वाण के लगभग १५ वर्ष पूर्व माना है। इस मान्यता में उनका आधार यह रहा है कि सामगाम सुत्त में बुद्ध जो महा-वीर-निर्वाण की बात सुनते हैं, वह यथार्थ नहीं थी। गोशालक की तेजोलेश्या से भगवान् महावीर बहुत पीड़ित हो रहे थे। उस समय लोगों में यह चर्चा उठी थी कि 'लगता है, अवश्य ही महावीर गोशालक की भविष्यवाणी के अनुसार छः महीने में ही काल-धर्म को प्राप्त हो जायेंगे।' उनका कहना है; सम्भवतः इसी निरा-

---

१. ई० पू० ५२८ के नवम्बर महीने और ई० पू० ५२७ में केवल २ महीने का ही अन्तर है। अतः महावीर-निर्वाण का काल सामान्यतया ई० पू० ५२७ ही लिखा जाता है। मुनि कल्याणविजयजी ने भी इसका प्रयोग यत्र-तत्र किया है।

धार अपवाद से महावीर-निर्वाण की बात चल पड़ी हो। वे लिखते हैं : "जिस वर्ष में ज्ञातपुत्र के मरण (मरण की अफवाह) के समाचार सुने, उसके दूसरे ही वर्ष बुद्ध का निर्वाण हुआ। बौद्धों के इस आशय के लेख से हम बुद्ध और महावीर के निर्वाण-समय के अन्तर को ठीक तौर से समझ सकते हैं।"[1] भगवती सूत्र के अनुसार महावीर गोशालक के तेजोलेश्या-प्रसंग के बाद १६ वर्ष जीए थे ; यह पहले बताया जा चुका है। इसी आशय को पकड़ कर मुनि कल्याण विजयजी ने बुद्ध के निर्वाण-काल को निश्चित किया है।

उन्होंने यह भी माना है: "मेरा यह आनुमानिक काल दक्षिणी बौद्धों की परम्परा के साथ भी मेल खाता है।"[2]

समीक्षा

जहाँ तक महावीर के निर्वाण-समय का सम्बन्ध है, मुनि कल्याण विजयजी ने सचमुच ही यथार्थता का अनुसरण किया है। किन्तु बुद्ध-निर्वाण के सम्बन्ध में तो उन्होंने अटकलबाज़ी से ही काम लिया है। बौद्ध शास्त्रों में उल्लिखित महावीर के निर्वाण-प्रसंगों को उन्होंने बहुत ही उलट कर देखा है। इस प्रकार खींच-तान करके निकाले गए अर्थ कभी ऐतिहासिक तथ्य नहीं बन सकते। दक्षिणी बौद्धों की परम्परा के साथ अपनी निर्धारित तिथि का मेल बिठाना भी नितान्त खींच-तान ही है। दोनों समयों में लगभग दो वर्षों का स्पष्ट अन्तर पड़ता है। उसे किसी प्रकार नगण्य नहीं माना जा सकता, जैसा कि उन्होंने मानने के लिए कहा है।[3]

मुनि कल्याण विजयजी ने भगवान् बुद्ध को ज्येष्ठ मानते में एक प्रमाण यह दिया है : "बौद्ध-साहित्य में बुद्ध के प्रतिस्पर्धी तीर्थंकरों का जहाँ-जहाँ उल्लेख हुआ है, वहाँ-वहाँ सर्वत्र निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र का नाम सबके पीछे लिखा गया है। इसका शायद यही कारण हो सकता है कि उनके प्रतिस्पर्धियों में ज्ञातपुत्र महावीर सबसे पीछे के प्रतिस्पर्धी थे।"[4] बुद्ध के प्रतिस्पर्धियों में महावीर का नाम

---

१. वीर-निर्वाण-संवत् और जैन काल-गणना, पृ० १५

२. वही, पृ० १६०

३. वही पृ१६०

४. वही, पृ० ३

अन्तिम हो, तो भी उसका यह अर्थ तो नहीं हो जाता कि महावीर बुद्ध से छोटे थे। प्रत्युत बौद्ध पिटकों के तथाप्रकार के प्रसंग तो इसी बात की ओर संकेत करते हैं कि उनके छहों प्रतिस्पर्धी उनसे पूर्व ही बहुत ख्याति और प्रभाव अर्जित कर चुके थे। वस्तुस्थिति यह है कि मुनि कल्याण विजयजी ने निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र का नाम सर्वत्र अन्तिम ही होने का जो लिखा है, वह भी यथार्थ नहीं है। ऐसे भी अनेक स्थल हैं, जहाँ निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र का नाम अन्तिम नहीं है।[1]

महावीर अधेड़—बुद्ध युवा

मुनि कल्याणविजयजी का कहना है :'[2] "अजातशत्रु के सम्मुख उसके अमात्य ने महावीर के सम्बन्ध में कहा है,[3] 'महाराज! यह निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र संघ और गण के मालिक हैं। गण के आचार्य, ज्ञानी और यशस्वी तीर्थंकर हैं। साधुजनों के पूज्य और बहुत लोगों के श्रद्धास्पद हैं। ये चिर-दीक्षित और अवस्था में अधेड़[4] हैं।' इससे महावीर का अधेड़ और बुद्ध का वृद्ध होना सिद्ध होता है।"

---

१. संयुत्त निकाय, दहर सुत्त, ३-१-१ में निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र का नाम तीसरा है; दीघनिकाय, सामञ्ञफल सुत्त, १-२ (राहुल सांकृत्यायन द्वारा अनूदित, पृ० २१) में पाँचवाँ है।

२. वीर-निर्वाण संवत् और जैन काल-गणना, पृ० ४

३. अयं देव निगंठो नातपुत्तो संघी चेव गणी च गणाचारियो च ञातो यसस्सी तित्थकरो साधुसंमतो बहुजनस्स रत्तस्सू चिरपब्बजितो अद्धगत वयोअनुप्पत्तो।

—दीघनिकाय, भाग १, पृ०४८, ४९ (वीर-निर्वाण-संवत् और जैन काल-गणना, पृ० ४ से उद्धृत)

४. मूल पालि में 'अद्धगतो' और 'वयोअनुपत्तो' ये दो शब्द व्यवहृत होते रहे हैं। पिटकों (विनयपिटक, चुल्लवग्ग, संघ भेदक खंधक, देवदत्त सुत्त और सुत्तनिपात, सभिय सु) में भी यहत्त शब्द-प्रयोग बहुलता से मिलता है। श्री राहुल सांकृत्यायन ने इनका अनुवाद 'अध्वगत' और 'वय:अनुप्राप्त' किया है।

इस प्रसंग को यदि समग्र रूप से देखा जाय तो स्पष्ट संकेत मिलता है कि महावीर अधेड़ थे और बुद्ध युवा; क्योंकि यहाँ मंत्री महावीर की विशेषताओं का वर्णन कर रहा है और विशेषता के प्रसंग में 'अधेड़' कहना महावीर की ज्येष्ठता का सूचक है। दूसरी बात, दीघनिकाय के इसी प्रसंग में गोशालक, संजय आदि सभी को चिर-दीक्षित और अधेड़ कहा गया है। केवल बुद्ध के लिए इन विशेषणों का प्रयोग नहीं किया गया है। इससे भी यही प्रमाणित होता है कि बुद्ध इन सबकी अपेक्षा में युवा थे।

दीघनिकाय में इसी प्रसंग पर आगे बताया गया है कि अजातशत्रु सभी धर्माचार्यों की गौरवगाथा सुनता है और अन्त में बुद्ध के पास धर्म-चर्चा के लिए जाता है। वहाँ जाकर वह बुद्ध से 'श्रामण्य-फल' पूछता है और यह भी बताता है कि 'मैं यही श्रामण्य-फल निगंठ नातपुत्त प्रभृति छहों धर्माचार्यों से पूछ चुका हूं।' बुद्ध और अजातशत्रु का यह प्रथम सम्पर्क था। ऐसी स्थिति में क्या यह स्पष्ट नहीं हो जाता कि निगंठ नातपुत्त प्रभृति छहों धर्मनायक बुद्ध से ज्येष्ठ थे ?

उत्तरकालिक ग्रन्थों से

इसके अतिरिक्त मुनि कल्याणविजयजी ने श्रेणिक और चेल्लणा-सम्बन्धी ऐसी जैन जन-श्रुतियों का प्रमाण दिया है, जिनमें राजा श्रेणिक के पहले बौद्ध व पीछे जैन बनने का उल्लेख है[1]; पर वास्तव में ये सारी बातें उत्तरवर्ती जैन कथाओं की हैं; अतः ऐतिहासिक दृष्टि में इनका विशेष स्थान नहीं बन पाता। किस ग्रन्थ के आधार पर उन्होंने इन कथाओं का उल्लेख किया है, यह स्वयं उन्होंने भी नहीं लिखा। इसी प्रकार बुद्ध के ज्येष्ठ होने के पक्ष में उन्होंने उत्तरवर्ती बौद्ध साहित्य से भी पांच मान्यताएं चुनी हैं[2], जिनका मौलिक आधार वे स्वयं भी नहीं दे पाये हैं। अधिकांश मान्यताएँ ऐसी हैं, जिनका मूल पिटकों से कोई सम्बन्ध नहीं है; अपितु कहीं-कहीं तो वे विरोधाभास उत्पन्न कर देती हैं।

---

१. वीर-निर्वाण संवत् और जैन काल-गणना, पृ० २

२. वही, पृ० १

असंगतियाँ

मुनि कल्याण विजयजी ने बुद्ध को बड़े और महावीर को छोटे प्रामाणित करने में जितनी भी युक्तियाँ दी हैं, उनका सबल होना तो दूर, वे पर्याप्त भी नहीं हैं। उनके द्वारा की गई संगतियों से कुछ एक महान् असंगतियों का आविर्भाव हो जाता है। जैसे कि त्रिपिटक एक धारा से यह कहते हैं—महावीर का निर्वाण बुद्ध से पूर्व हुआ। इतना ही नहीं, पिटकों ने स्वयं बुद्ध के मुँह से कहलवाया है—"मैं सभी धर्म-नायकों में छोटा हूँ।" तथा उनमें और भी अनेक स्थलों पर बुद्ध को सभी धर्मनायकों से छोटा कहा गया है।[1] मुनि कल्याण विजयजी उक्त प्रसंगों की कोई संगति नहीं दे पाए हैं। उन्होंने सर्वत्र ऐसे प्रसंगों को काल्पनिक और भ्रामक कहकर टाला है। यह उचित नहीं हुआ है और न बौद्ध पिटकों के साथ न्याय भी। पूर्व और पश्चिम के लगभग सभी इतिहासकारों ने महावीर और बुद्ध के काल-निर्णय में इन आधारों को मूलभूत माना है।

दूसरी असंगति यह है कि मुनि कल्याण विजयजी कोणिक के राज्य-काल के ८वें वर्ष में बुद्ध-निर्वाण-सम्बन्धी उत्तरकालिक ग्रन्थों की मान्यता को मूलभूत मानकर चले हैं और गोशालक के चरम-निरूपण से महावीर का १६ वर्ष का जीवन-काल बताकर यह निष्कर्ष उपस्थित करते हैं : "महावीर अजातशत्रु की राज्य-प्राप्ति के सोलह वर्ष से भी अधिक जीवित रहे थे और बुद्ध उसके राज्य-काल के ८वें वर्ष में ही देह-मुक्त हो चुके थे।"[2]

जैसा कि बताया गया—कोणिक के राज्य-काल के ८वें वर्ष में बुद्ध-निर्वाण की बात उत्तरकालिक और नितान्त पौराणिक है। उसे एक क्षण के लिए सही मान लें, तो भी जैन परम्परा के अनुसार महावीर-निर्वाण और श्रेणिक के देह-मुक्त होने में जो १७ वर्ष का अन्तर माना जाता है, उसके साथ इसकी कोई संगति नहीं बैठती है, क्योंकि कोणिक का राज्यारोहण भगवान् महावीर के निर्वाण से लगभग १७ वर्ष पूर्व हुआ था।[3] इस स्थिति में यदि बुद्ध का निर्वाण

---

१. इन सब प्रसंगों की विस्तृत चर्चा 'महावीर की ज्येष्ठता' प्रकरण में की गई है।
२. वीर-निर्वाण-संवत् और काल-गणना, पृ० ७
३. यह तथ्य 'डा० जेकोबी की दूसरी समीक्षा' के अन्तर्गत 'असंगतियाँ' प्रकरण में प्रमाणित किया जा चुका है।

कोणिक-राज्यारोहण के ८वें वर्ष में माना जाये तो बुद्ध और महावीर के निर्वाण में ९ वर्ष से अधिक अन्तर रहना सम्भावित नहीं है। किन्तु दूसरी ओर स्वयं मुनि कल्याण विजयजी के अनुसार ही बुद्ध और महावीर के निर्वाण-काल में १४½ वर्ष का अन्तर माना गया है।[1]

इतनी बड़ी असंगतियों के रहते हुए, उनका समाधान कैसे बुद्धिगम्य हो सकता है ? इतिहास के क्षेत्र में जाकर हमें इतिहास की मर्यादाओं में ही विषय को परखना चाहिए।

श्री विजयेन्द्र सूरि

श्री विजयेन्द्र सूरि द्वारा लिखित तीर्थंकर महावीर दो खण्डों में प्रकाशित हुआ है।[2] ऐतिहासिक तथ्यों का वह एक भरा-पूरा आकलन है। श्री विजयेन्द्र-सूरि ने, अनेकानेक प्रमाणों से भगवान् महावीर का निर्वाण-काल ई० पू० ५२७ था, यह स्थापना की है।[3] उन्होंने बुद्ध का निर्वाण-काल ई० पू० ५४४ माना है।[4] कहना चाहिए, उन्होंने सम्भवतः समग्ररूप से मुनि कल्याण विजयजी की धारणा का ही समर्थन किया है। बौद्ध पिटकों में आये हुए महावीर-निर्वाण के प्रसंगों पर उन्होंने डा० ए० एल० बाशम की इस मान्यता को सम्भावित माना है कि वह वस्तुतः गोशालक का मरण था[5], जिसे बौद्ध-शास्त्र-संग्राहकों ने महावीर का मरण समझ लिया था।[6]

श्री विजयेन्द्र सूरि की उपरोक्त धारणा भी कल्पना-प्रधान है, न कि प्रमाण-प्रधान। कुछ समय के लिए गोशालक के मरण को महावीर का मरण समझा भी जा सकता है, पर गोशालक की मृत्यु के पश्चात् भगवान् महावीर सोलह वर्ष और जीयें और वह भ्रान्ति ज्यों-की-त्यों बनी रहे, यह कैसे बुद्धि-

---

१. वीर-निर्वाण-संवत् और जैन काल-गणना, पृ० १८
२. काशीनाथ सराक, यशोधर्म मन्दिर, बम्बई से प्रकाशित, १९६३
३. तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृ० ३१९-३२४
४. वही, पृ० ३२६
५. आजीवक, पृ० ७५
६. तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृ० ३२३

गम्य हो सकता है। दूसरी बात, जैसे कि कुछ विद्वानों का मत है, उपलब्ध बौद्ध पिटकों का प्रणयन बुद्ध-निर्वाण से दो-तीन शताब्दी बाद हुआ। वहाँ तक भी वह भूल ज्यों-की-त्यों चलती रही, यह कैसे शक्य हो सकता है, जब कि महावीर और बुद्ध लगभग एक ही सीमित क्षेत्र में विहार करने वाले और एक ही श्रमण-परम्परा के उन्नायक थे।

श्री विजयेन्द्र सूरि के प्रतिपादन में एक असंगति और खड़ी होती है। वह यह है कि एक ओर वे मानते हैं—'बुद्ध ने गोशालक के मरण को महावीर के मरण के रूप में सुना', दूसरी ओर वे मानते हैं—'बुद्ध और गोशालक; दोनों का ही निधन भगवान् महावीर के निर्वाण से १६ वर्ष पूर्व हुआ।'[1] ऐसी स्थिति में बुद्ध गोशालक के मृत्यु-संवाद को कैसे सुनते, जब कि पिटकों के अनुसार बुद्ध ने अपने निर्वाण से वर्षों पूर्व ही उस संवाद को सुन लिया था ? यदि पिटकों के आधार पर यह माना जाये कि ऐसी कोई घटना घटित हुई थी, तो क्या यह भी मान लेना अपेक्षित नहीं होगा कि वह उनकी मृत्यु से वर्षों पूर्व हुई थी ?

श्री श्रीचन्द रामपुरिया

प्रस्तुत विषय पर एक विवेचनात्मक निबन्ध श्रीचन्दजी रामपुरिया का प्रकाशित हुआ है।[2] उन्होंने अपने निबन्ध में प्रस्तुत विषय के पक्ष और विपक्ष की लभ्य सामग्री का सुन्दर संकलन किया है तथा प्रचलित घटनाओं की यौक्तिक समीक्षा भी की है; पर उन्होंने विषय को किसी निर्णायक स्थिति पर नहीं पहुँचाया है। उनका अधिक झुकाव 'महावीर की ज्येष्ठता' का लगता है; क्योंकि उन्होंने डा० जेकोबी और मुनि कल्याण विजयजी के लगभग सारे तर्कों का निराकरण किया है, जो कि उन्होंने बुद्ध की ज्येष्ठता प्रमाणित करने के पक्ष में दिये हैं। इस सम्बन्ध में उन्हें केवल दो ही प्रसंग ऐसे लगे हैं, जो महावीर की ज्येष्ठता में विचारणीय बनते हैं।

---

१. तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृ० ३२६
२. जैनभारती, वर्ष १२, अंक १, पृ० ५-२१

प्रथम प्रसंगको वे इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं[1] : "अजातशत्रु जब राज्याभिरूढ़ हुआ, उस समय महावीर जीवित थे, ऐसा बौद्ध पिटकों के उल्लेखों से स्पष्ट है। बौद्ध पिटकों में उल्लेख है कि भगवान् महावीर ने अभय को बुद्ध से चर्चा करने को भेजा था[2]। देवदत्त ने बुद्ध से यह कह कर कि वे जीर्ण, अध्वगत, वयप्राप्त हो चुके, भिक्षु-संघ की महन्ताई की अपने लिए मांग की। बुद्ध बोले—'सारिपुत्र, मौद्गल्यायन को भी मैं भिक्षुसंघ नहीं देता, तुझ मुर्दे थूंक को तो क्या ?' यह सुन देवदत्त ने अपमान का बोध किया। यह देवदत्त का पहला आघात (द्रोह) था। देवदत्त ने कुमार अजातशत्रु को अपने वश में कर रखा था। वह अजातशत्रु को उकसा कर बोला—'तुम अपने पिता बिम्बिसार को मार कर राजा होओ; मैं भगवान् को मार कर बुद्ध होऊंगा।' अजातशत्रु अपने पिता को मारने के लिए अन्तःपुर में प्रविष्ट हुआ। उपचारक महामात्यों ने उसे पकड़ लिया और उसे ले बिम्बिसार के पास पहुँचे। बिम्बिसार ने अजातशत्रु से पूछा—'मुझे किस लिए मारना चाहते थे?' अजातशत्रु बोला—'राज्य चाहता हूँ।' बिम्बिसार ने अजातशत्रु को राज्य सौंप दिया। राज्याभिरूढ़ होने के बाद देवदत्त ने महाराज अजातशत्रु से बुद्ध को मारने के लिए आदमी चाहे। उनकी सहायता से बुद्ध को मारने का षड्यन्त्र रचा, पर वह विफल गया। इस घटना के बाद देवदत्त ने बुद्ध पर शिला फेंकी। वह देवदत्त का प्रथम आनन्तर्य (मोक्ष का बाधक कर्म) था। देवदत्त ने बुद्ध पर हाथी छुड़वाया। हाथी ने बुद्ध की चरणधूलि शिर पर चढ़ाई। देवदत्त का लाभ-सत्कार नष्ट हो गया। वह मांग-मांग कर खाने लगा। इसके बाद देवदत्त ने संघ-भेदकी चेष्टा की। बुद्ध ने समझाया—'संघ में फूट डालना तुझे मत पसन्द हो। यह भारी अपराध है।' पूर्वाह्न समय देवदत्त ने आनन्द से कहा—'मैं बुद्ध से, भिक्षु-संघ से अलग ही उपोसथ—अलग ही संघ-कर्म करूँगा'।' बुद्ध से आनन्द ने यह बात कही। बुद्ध बोले—'पापी के साथ भलाई दुष्कर है।' इसके बाद पाँच सौ वज्जिपुत्तक नये भिक्षुओं को अपने मत में कर, संघ फोड़, देवदत्त गयासीस को चल दिया। बुद्ध ने सारिपुत्त और मौद्गल्यायन को भिक्षुओं को वापस लाने के लिए भेजा। वे पाँच सौ ही भिक्षुओं को साथ लेकर

---

१. जैन भारती, वर्ष १२, अंक १, जनवरी १९५१, पृ० १५
२. मज्झिम निकाय, अभयराजकुमार सुत्तन्त, पृ० २३४-२३६

लौटे। बुद्ध ने सारिपुत्र में दूत के अपेक्षित गुण बतलाये। देवदत्त के बारे में कहा—'देवदत्त अपायिक (दुर्गति में जाने वाला) है, नैरयिक है, कल्पस्थ (कल्पभर नरक में रहने वाला) है, अचिकित्स्य—लाइलाज है।'[1]

महावीर ने अभयकुमार को चर्चा के लिए भेजा, उसका विषय देवदत्त को बुद्ध द्वारा कहे गये अन्तिम कठोर वचनों का औचित्य-अनौचित्य था। प्रश्न इस रूप में बनाया गया था—'क्या तथागत ऐसा वचन बोल सकते हैं, जो दूसरों को अप्रिय हो ?' बुद्ध जवाब देते कि अप्रिय नहीं बोला जा सकता, तो प्रश्न था—'फिर बुद्ध ने देवदत्त के बारे में उपर्युक्त अप्रिय शब्द कैसे कहे ?' यदि जवाब मिलता कि अप्रिय शब्द बोले जा सकते हैं, तब प्रश्न था—'तब बुद्ध और पृथक् जन में क्या अन्तर है ?' इस चर्चा-प्रसंग से स्पष्ट होता है कि देवदत्त के बारे में बुद्ध द्वारा उपर्युक्त शब्द कहे जाने के प्रसंग के कुछ साल बाद तक महावीर जीवित थे। देवदत्त अजातशत्रु के राज्याभिरूढ़ होने के बाद संघ-विच्छेद कर अलग हुआ था। महावीर के निर्वाण का संवाद सारिपुत्र के जीवन-काल में बुद्ध को मिला था। सारिपुत्र का देहान्त बुद्ध के पूर्व ही हुआ—इसमें बौद्ध लेखक एकमत हैं।[2] उपर्युक्त सारे बौद्ध उल्लेखों को परस्पर मिलाने से यह प्रकट होता है कि महावीर-निर्वाण अजातशत्रु के राज्यारोहण के बाद देवदत्त के विषय में बुद्ध द्वारा उपर्युक्त उद्‌गार प्रकट किये जाने और सारिपुत्र के देहान्त के बीच होना चाहिए। बुद्ध का निर्वाण अजातशत्रु के राज्यत्वकाल के ८वें वर्ष में बतलाया गया है। यदि यह ठीक मान लिया, तो महावीर का निर्वाण अजातशत्रु के राज्याभिरूढ़ होने के और भी कम अवधि के अन्दर घटित होना चाहिए और अजातशत्रु के राज्यत्वकाल के प्रथम वर्ष के पहले नहीं हो सकता। हम भगवान् महावीर के निर्वाण को अजातशत्रु के राज्यत्वकाल के प्रथम वर्ष में ही मानकर देखें कि उसका क्या नतीजा निकलता है। इसका अर्थ होता है कि जब महावीर ने ७२ वर्ष की अवस्था में निर्वाण प्राप्त किया, उस समय तथागत बुद्ध की अवस्था ७३ वर्ष की थी। जब महावीर ने ४२ वर्ष की अवस्था में केवलज्ञान प्राप्त किया, तब बुद्ध की अवस्था ४३ वर्ष की थी

---

१. विनय-पिटक, पृ०४८१-४८२

२. *The Life of Buddha*, by Edward J. Thomas, pp. 140-141

अर्थात् उन्हें वोधि प्राप्त किये ८ वर्ष हो चुके थे। जव महावीर ने ३० वर्ष की अवस्था में दीक्षा ग्रहण की, उस समय बुद्ध की अवस्था ३१ वर्ष की थी और उन्हें प्रव्रज्या ग्रहण किये तीन वर्ष हो चुके थे। जव महावीर का जन्म हुआ, उस समय बुद्ध १ वर्ष के थे।"

उक्त विवेचन केवल इसी आधार पर ठहरता है कि 'अजातशत्रु के राज्यारोहण के ८ वर्ष बाद बुद्ध का निर्वाण हुआ।' पर स्वयं रामपुरियाजी ने भी 'यदि यह ठीक मान लिया जाये तो', कहकर ही इस तथ्य को प्रस्तुत किया है। वस्तुस्थिति यह है कि '८ वर्ष' की मान्यता केवल महावंश ग्रन्थ की काल-गणना के आधार पर चलती है[1] और वह काल-गणना विद्वानों की दृष्टि में प्रमाणित नहीं है।[2]

रामपुरियाजी अपने दूसरे प्रसंग की चर्चा इस प्रकार करते हैं: "बुद्ध अन्तिम शय्या पर थे। रात्रि के पिछले पहर उनका परिनिर्वाण होने वाला था। ऐसी हालत में कुसीनगरवासी सुभद्र परिव्राजक अपनी शंका के निवारणार्थ मरणासन्न बुद्ध के दर्शन करने के लिए गया। आनन्द ने बुद्ध के कहने से उसे दर्शन करने दिया। दर्शन कर उसने पूछा —'हे गौतम ! जो श्रमण-ब्राह्मण संघी, गणी, गणाचार्य, प्रसिद्ध यशस्वी, तीर्थंकर, बहुत लोगों द्वारा उत्तम माने जाने वाले हैं; जैसे कि—पूर्ण काश्यप, मक्खली गोशाल, अजित केश कम्बल, प्रकुध कात्यायन, संजय वेलट्ठिपुत्त, निगंठ नाथपुत्त, (क्या) वे सभी अपने दावा (प्रतिज्ञा) को (वैसा) जानते (या) सभी (वैसा) नहीं जानते; (या) कोई-कोई वैसा जानते, कोई-कोई वैसा नहीं जानते हैं ? बुद्ध ने इसका उत्तर न देते हुए भी उत्तर दिया—'न्याय-धर्म (आर्य-धर्म=सत्य-धर्म) के एक देश को भी देखने वाला यहाँ से बाहर कोई नहीं है।[3] उपर्युक्त प्रसंग में प्रश्न उठता है कि क्या बुद्ध के परिनिर्वाण के दिन तक महावीर जीवित थे ? सुभद्र का प्रश्न जीवित तीर्थंकरों के बारे में था या निर्वाण-प्राप्त तीर्थंकरों के सिद्धान्तों की चर्चा-मात्र ?"

---

१. अजातसत्तुनो अट्ठमे वस्से मुनि निब्बुते।
—महावंश, परिच्छेद २

२. विस्तार के लिए देखें, 'काल-गणना' प्रकरण

३. दीघनिकाय, महापरिनिब्बाण सुत्त, पृ० १४५

उक्त प्रसंग को भी रामपुरियाजी ने बहुत सजगता से तोला है; क्योंकि ऐसे प्रश्न बहुत बार ढर्रे के रूप में भी हुआ करते हैं और यह प्रश्न तो छहों नाम एक साथ बोल देने के ढर्रे रूप ही हुआ है; यह इससे भी स्पष्ट है कि उक्त नामों में मक्खली गोशाल[1] और पूर्ण काश्यप[2] के नाम भी आये हैं; जो कि सर्वसम्मत रूप से बुद्ध से पूर्व ही निधन प्राप्त कर चुके थे। इस प्रकार उक्त प्रसंग बुद्ध की ज्येष्ठता का निर्णायक प्रमाण नहीं बन सकता।

डा० शान्तिलाल शाह

सन् १९३४ में डा० शान्तिलाल शाह की *Chronological Problems* नामक पुस्तक बोन (जर्मनी) से प्रकाशित हुई थी।[3] लेखक के शब्दों में : "इस[4] पुस्तक का उद्देश्य केवल महावीर और बुद्ध की निर्वाण-तिथि व चन्द्रगुप्त मौर्य और अशोक का राज्यारोहण-तिथि को ही निश्चित करना नहीं है और न जैन धर्म के पारम्परिक तथ्यों को ही प्रामाणिकता देना है, अपितु उत्तर भारत के अजातशत्रु से लेकर कनिष्क तक के सभी राजाओं के काल-क्रम का नव-सर्जन करना है।" अपने

---

१. मक्खली गोशाल की मृत्यु भगवान् महावीर के निर्वाण से १६ वर्ष पूर्व ही हो चुकी थी। डा० शाह ने बुद्ध द्वारा 'सामगाम-सुत्त' में महावीर-मरण के संवाद-श्रवण को 'गोशालक के मरण' के रूप माना है। डा० जेकोबी, मुनि कल्याण विजयजी, डा० जायसवाल आदि सभी ने महावीर और बुद्ध का जो काल-क्रम माना है, उन सबमें गोशालक बुद्ध से पूर्व-निर्वाण-प्राप्त ही माने गये हैं।

२. देखें, लेखक की अन्य कृति—'आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन' में 'समसामयिक धर्म-नायक' प्रकरण

३. इस पुस्तक पर प्रकाशक और प्राप्ति-स्थान नहीं दिया गया है।

४. Nor alone to fix the death-year of Buddha or Māhavīra or the coronation dates of Chandragupta and Asoka, nor to authenticate the Jaina traditional account, but also to reconstruct the chronology of the whole history of Northern India from Ajātashatru to Kanishka is the aim of this book; because, chronology is not one or two dates, but the record of the whol chain of events in time order.

Chronological Problems, preface, p.1

उद्देश्य के अनुसार अजातशत्रु से लेकर कनिष्क तक के काल-क्रम को नया रूप देने का लेखक ने भरसक प्रयत्न किया है। कुछ-एक नये तथ्यों को ऐतिहासिक रूप देने में लेखक सफल भी हुए हैं; किन्तु यत्र-तत्र जैन पारम्परिक मान्यताओं को ऐतिहासिकता देने में उनका आग्रह-सा भी व्यक्त हुआ है।

डा० शाह के अनुसार महावीर का निर्वाण-काल ई० पू० ५२७ व बुद्ध का निर्वाण-काल ई० पू० ५४३ है। दोनों ही निर्वाण-कालों को उन्होंने अपने शब्दों में 'केवल पारम्परिक आधारों'[1] पर ही स्वीकार किया है। पारम्परिक मान्यताएँ भी ऐतिहासिक हो जाती हैं, यदि उन्हें अन्य समर्थन मिल जाते हैं। पर डा० शाह ने इस अपेक्षा को अधिक महत्त्व नहीं दिया। परम्परागत उक्त तथ्यों को ही मूलभूत मानकर उन्होंने सम्राट् कनिष्क तक की काल-गणना को घटित करने का प्रयन्त किया है। इससे बहुत सारे सर्वमान्य ऐतिहासिक तथ्य भी विघटित हो गये हैं। उदाहरणार्थ—चन्द्रगुप्त मौर्य का ई० पू० ३२२ का राज्याभिषेक-काल ऐतिहासिक क्षेत्र का एक सर्व-सम्मत तथ्य है, जिसे इतिहासकारों ने उस धूंधले युग में झाँकने के लिए एक प्रकाश-स्तम्भ (Light-house) माना है।[2] किन्तु डा० शाह के अनुसार वह समय ई० पू० ३१७ का आ जाता है।

जहाँ तक महावीर के निर्वाण-काल का प्रश्न है, पारम्परिक और ऐतिहासिक दोनों ही आधारों से ई० पू० ५२७ सुनिश्चित है और बुद्ध का निर्वाण-काल ई० पू० ५४३ सीलोनी परम्परा के आधार पर है और वह ऐतिहासिक अवलोकन में सही नहीं उतरता।[3]

---

१. *Chronological Problem*, ps. 23

२. देखें, 'भगवान् महावीर का तिथिक्रम' प्रकरण

३. देखें, 'बुद्ध-निर्वाण-काल' प्रकरण

: ६ :

इतिहासकारों की दृष्टि में

पूर्व और पश्चिम के अनेकानेक इतिहासकारों ने महावीर और बुद्ध की समसामयिकता पर बहुत कुछ लिखा है। उन सबका एक-एक कर उल्लेख कर पाना सम्भव नहीं है, पर यहाँ एक ऐसे समुल्लेख को उद्धृत किया जा रहा है, जो इतिहास की वर्तमान धारा का निष्कर्ष माना जा सकता है। डा० आर० सी० मजूमदार, डा० एच० सी० रायचौधरी तथा डा० के० के० दत्त द्वारा लिखित *An Advance History of India* नामक ग्रन्थ में प्रस्तुत विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। ग्यारह सौ से भी अधिक पृष्ठों का यह ग्रन्थ वर्तमान में भारतवर्ष के विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर परीक्षार्थियों के लिए पाठ्य-ग्रन्थ के रूप में निर्धारित है। इस ग्रन्थ के Ancient India खण्ड में महावीर-निर्वाण के विषय में कहा गया है : "कहा जाता है, यह घटना मौर्यों से २१५ वर्ष पूर्व तथा विक्रम से ४७० वर्ष पूर्व घटित हुई थी, जिसे साधारणतया ई०पू० ५२८ बताया जाता है। किन्तु कुछ आधुनिक विद्वान् इस घटना के ई० पू० ४६८ में घटित होने का समर्थन करते हैं। उसका आधार जैन मुनि हेमचन्द्र द्वारा प्रतिपादित वह परम्परा है, जिसके अनुसार महावीर-निर्वाण और चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यारोहण का अन्तर १५५ वर्ष है, न कि २१५ वर्ष। ई० पू० ४६८ की यह तारीख कुछ एक प्राचीनतम बौद्ध-शास्त्रों में स्पष्टतया उल्लिखित इस कथन के साथ संगत नहीं होती कि महावीर बुद्ध से पूर्व ही निर्वाण-प्राप्त हो चुके थे। ई० पू० ५२८ की तिथि भी कठि-नाइयों से परे नहीं है। सर्वप्रथम तो हेमचन्द्र के इस उल्लेख से उसका विरोध है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के १५५ वर्ष पूर्व महावीर का निर्वाण हुआ था। दूसरी बात यह है कि कुछ जैन-ग्रन्थों के अनुसार महावीर का निर्वाण विक्रम के राज्यारोहण से नहीं, अपितु जन्म से ४७० वर्ष पूर्व हुआ था। उनके अनुसार विक्रम-जन्म की घटना का सम्बन्ध ई०पू० ५८ में स्थापित विक्रम संवत् से नहीं है;

इसीलिए ई० पू० ५२८ की तारीख महावीर-निर्वाण के लिए निर्विरोध परम्परा के रूप में स्वीकार नहीं की जा सकती। कुछ जैन लेखक विक्रम के जन्म और विक्रम-संवत् की स्थापना के बीच १८ वर्ष का अन्तर मान लेते हैं और इस प्रकार जैन परम्परा से सम्बन्धित महावीर-निर्वाण की तारीख (५८+१८+४७०=ई० पू० ५४६) की लंकावासियों द्वारा मान्य बुद्ध-निर्वाण की तारीख (ई०पू० ५४४) के साथ संगति बिठाना चाहते हैं, किन्तु यह सुझाव भी किसी प्रामाणिक परम्परा पर आधारित नहीं कहा जा सकता है। मेरुतुंग के अनुसार अन्तिम जिन अर्थात् तीर्थंकर का निर्वाण पारम्परिक विक्रम के जन्म से नहीं, अपितु उसकी विजय तथा शक-राज्य की समाप्ति से ४७० वर्ष पूर्व हुआ था। ज्ञातपुत्र के निर्वाण की ई० पू० ५२८ की तारीख की बुद्ध के निर्वाण की कैन्टनीज तारीख (ई० पू० ४८६) के साथ कुछ अंशों में संगति बिठाई जा सकती है। परन्तु तब हमें यह मानना पड़ेगा कि बुद्ध के बोधि-लाभ के थोड़े ही समय पश्चात् व उनके निर्वाण से ४५ वर्ष[1] पूर्व ही महावीर का निर्वाण हो जाता है तथा यह भी नहीं हो सकता कि उस समय बुद्ध एक दीर्घ-कालीनप्रसिद्ध धार्मिक आचार्य बन गये हों, जैसा कि बौद्ध-शास्त्र हमें मानने को बाधित करते हैं। कुछ जैन सूत्र ऐसा बताते हैं कि अजातशत्रु के राज्यारोहण तथा उसके अपने पड़ोसी शत्रुओं के साथ युद्ध प्रारम्भ होने के सोलह वर्ष बाद महावीर का निर्वाण हुआ। इससे तो महावीर-निर्वाण बुद्ध-निर्वाण से ८ वर्ष बाद होगा, क्योंकि लंका की गाथाओं (Chronicles) के अनुसार बुद्ध अजातशत्रु के राज्यारोहण के ८ वर्ष बाद निर्वाण प्राप्त हुए। इस दृष्टिकोण के अनुसार तीर्थंकर महावीर का निर्वाण ई०पू० ४७८ में होगा, यदि हम कैन्टनीज-परम्परा (ई० पू० ४८६) को स्वीकार करें; और यदि लंका की परम्परा (ई० पू० ५४४) को स्वीकार करें, तो ई० पू० ५३६ में होगा। ई० पू० ४७८ की तारीख हेमचन्द्र के उल्लेख के साथ लगभग मेल खाती है तथा इसके आधार

---

१. यहाँ '४२ वर्ष' होना चाहिए। लगता है, भूल से ४५ वर्ष (forty-five years) छपा है, क्योंकि ई० पू० ५२८ और ई० पू० ४८६ के बीच ४२ वर्ष का अन्तर है। ४५ वर्ष मानने से तो बुद्ध को उस समय बोधि-लाभ भी नहीं होता।

पर चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्यारोहण ई० पू० ३२३ में ठहरता है, जो असत्य नहीं हो सकता। किन्तु स्वयं महावीर के सम्बन्ध में यह निष्कर्ष बौद्ध शास्त्रों के उस स्पष्ट प्रमाण के साथ कुछ भी मेल नहीं खाता, जो बुद्ध को अपने ज्ञात्रिक प्रतिस्पर्धी (महावीर) के बाद भी जीवित बताते हैं। जैन परम्परा के अनुसार 'तीर्थंकर महावीर का निर्वाण अजातशत्रु के राज्याभिषेक के लगभग १६ वर्ष बाद हुआ।' बौद्ध परम्परा की मान्यता है—'अजातशत्रु के राज्य-काल के ८वें वर्ष से पूर्व ही बुद्ध का निर्वाण हुआ।' इन दोनों मान्यताओं की संगति तभी हो सकती है, जबकि यह माना जाये कि कोणिक को चम्पा का राजा मानने वाली जैन-गणना का प्रारम्भ कोणिक के चम्पा-शाखा के राज्याभिषेक से हुआ है और बौद्ध-गणना का प्रारम्भ राजगृह के राज्याभिषेक से हुआ है।"[१]

---

१. The event is said to have happened 215 years before the Mauryas, and 470 years before Vikrama. This is usually taken to refer to 528 B.C., But 468 B.C. is preferred by some modern scholars, who rely on a tradition recorded by the Jain monk Hemchandra that the interval between Mahavira's death and the accession of Chandragupta Maurya was 155, and not 215 years. The latter date does not accord with the explict statement found in some of the earliest Buddhist texts that Mahavira predeceased Buddha. The earlier date is also beset with difficulties. In the first place it is at variance with the testimony of Hemchandra, who places Mahavira's *Nirvana* only 155 years before Chandragupta Maurya. Again some Jain texts place the *Nirvana* 470 years before the *birth* of Vikrama and not his *accession*, and as this event, according to the Jains, does not coincide with the foundation of era of 58 B. C. attributed to Vikrama, the date 528 B. C. for Mahāvīra's death can hardly be accepted as representing unanimous tradition. Certain Jain writers assume an interval of 18 years between the birth of Vikrama and the

समीक्षा

उक्त विवेचन में विशेष ध्यान देने की एक बात यह है कि वर्तमान के इन इतिहास-विशेषज्ञों ने डा० जेकोबी और डा० शार्पेन्टियर द्वारा माने गये महावीर और बुद्ध के निर्वाण-सम्बन्धी काल-क्रम को कोई मान्यता नहीं दी है। इसका मूलभूत कारण यही है कि तब से अब तक ऐतिहासिक धारणाओं में अनेक अभिनव उन्मेष आ चुके हैं।

तीनों इतिहासकारों ने महावीर के निर्वाण-प्रसंग के सम्बन्ध में दो तथ्यों को मूलभूत माना है और एतद्विषयक निर्णय में उनकी सुरक्षा पूर्ण अपेक्षित मानी है। एक तो महावीर-निर्वाण के तीन तिथि-क्रमों में से उन्होंने ई० पू० ५२८ के तिथि-क्रम को सर्वाधिक विश्वस्त माना है; दूसरा तथ्य बौद्ध पिटकों में आने वाले महावीर के निर्वाण-सम्बन्धी समुल्लेख है। 'महावीर का निर्वाण

---

foundation of the era attributed to him and thereby seek to reconcile the Jain tradition about the date of Mahāvīra's *Nirvana* (58+18+470=546 B.C.) with the Ceylonese date of the great decease of Buddha (544 B.C.), but the suggestion can hardly be said to rest on any reliable tradition. Merutunga places the death of the last *Jina* or *Tirthankara* 470 years before the end of Saka rule and the Victory, and not the birth of the traditional Vikrama. The date 528 B. C. for the *Nirvāna* of the *Jnātrika* teacher can to a certain extent be reconciled with the Cantonese date of the death of Buddha (486 B. C.). But then we shall have to assume that Mahāvīra died shortly after Buddha's enlightenment, forty-five years before the *Parinirvana*, when the latter could hardly have become a renowned religious teacher of long standing as the Buddhist (canonical) texts would lead us to believe. Certain Jaina *Sutras* seem to suggest that Mahāvīra died about sixteen years after the accession of Ajatashatru and the commencement of his wars with his hostile neighbours. This would

बुद्ध से पूर्व हुआ' यह तो उन्होंने निश्चित माना ही है और ऐसे तिथि-क्रम की अपेक्षा व्यक्त की है, जो इन तथ्यों को साथ लेकर चल सके। उक्त विवेचन में अल्पता की बात यह रही है कि यहाँ जीवन-प्रसंगों को तो संगति देने का प्रयत्न किया गया है, पर उनके साथ किसी भी काल-क्रम को सगत करने का पर्याप्त प्रयास नहीं किया गया। काल-क्रम की दृष्टि से महावीर-निर्वाण उन्होंने ई० पू० ५२८ माना है और बुद्ध-निर्वाण को केन्टोनीज़ परम्परा के अनुसार ई० पू० ४८६ माना है। ऐसी स्थिति में महावीर और बुद्ध का व्यवधान ४२ वर्ष का पड़ जाता है। इतने व्यवधान के रहते महावीर और बुद्ध के जीवन-प्रसंगों में कोई संगति नहीं बैठ सकती। अपेक्षा है ऐसे काल-क्रम को अपनाने की, जो उन जीवन्त जीवन-प्रसंगों के साथ संगत हो सके।

---

place the *Nirvāna* of the Jain teacher eight years after Buddha's death, as according to the Ceylonese chronicles, Buddha died 8 years efter the enthronment of Ajatashatru. The *Nirvāna* of the *Tirthankara* would, according to this view, fall in 478 B.C., if we accept the Cantonese reckoning (486 B.C.) as our basis, and in 538 B.C., if we prefer the Ceylonese epoch. The date 478 B. C. would almost coincide with that to which the testimony of Hemchandra leads us and place the accession of Chandragupta Maurya in 323 B.C. which cannot be far from truth. But the result in respect of Mahāvīra himself is at variance with the clear evidence of the Buddhist canonical texts, which make the Buddha survive his *Janātrika* rival. The Jain statement that their *Tirthankara* dies some sixteen years after the accession of Kunika (Ajatashatru) can be reconciled with the Buddhist tradition about the death of the same teacher before the eight years of Ajatshatru, if we assume that the Jains, who refer to Kuṇika as the ruler of Champa, begin their reckoning from the accession of the prince to the vice-regal throne of Champa while the Buddhists make the accession of Ajatashatru to the royal throne of Rajgriha the basis of their calculation."

: ७ :

अनुसन्धान और निष्कर्ष

सर्वांगीण दृष्टि

महावीर और बुद्ध की समसामयिकता और उनके निर्वाण का प्रश्न पहले-पहल उपलब्ध इतिहास के केवल सामान्य तथ्यों पर हल किया जाने लगा था; फिर कुछ विद्वानों ने बौद्ध पिटकों की तह में जाकर इस विषय का अनुसन्धान आरम्भ किया, तो कुछ विद्वानों ने जैनशास्त्रों की तह में जाकर। सामान्य इतिहास जहाँ आगमों और त्रिपिटकों की पुट पाये बिना अपूर्ण था, वहाँ आगमों और त्रिपिटकों की एकांगी छानबीन ने सारे विषय पर कुछ साम्प्रदायिक रंग ला दिया। कुछ एक लोगों ने बौद्ध पिटकों को अक्षरशः प्रमाण माना और जैन आगमों को साधारणतया; तो कुछ-एक लोगों ने जैन आगमों को अक्षरशः प्रमाण माना व बौद्ध पिटकों को साधारणतया। यह ऐतिहासिक पद्धति नहीं हो सकती। प्रस्तुत विषय के सर्वांगीण निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए सामान्य ऐतिहासिक आधारों, बौद्ध पिटकों के समुल्लेखों और जैन आगमों के निरूपणों को सन्तुलित रखते हुए ही कुछ सोचना होगा। इस विषय में हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि आगम और त्रिपिटक क्रमशः जैन और बौद्ध परम्पराओं में मूल रूप से प्रमाण माने जाते हैं। उत्तरवर्ती ग्रन्थ वहीं तक प्रमाण हैं, जहाँ तक कि वे उन मौलिक शास्त्रों का साथ देते हैं।

महावीर और बुद्ध की समसामयिकता पर विचार करने में अनेकानेक आधार उपलब्ध होते हैं किन्तु उन सब में भी साक्षात्, स्पष्ट और अनन्तर प्रमाण बौद्ध पिटकों का है। अतः आवश्यक है, बौद्ध पिटकों के उन प्रकरणों पर एक-एक कर विचार किया जाये।

निर्वाण-प्रसंग

जिन प्रकरणों में भगवान् महावीर के निर्वाण की चर्चा है, वे क्रमशः

इस प्रकार हैं :

(१) "एक समय भगवान् शाक्य (देश) में सामगाम में विहार करते थे। उस समय निगंठ नातपुत्त अभी-अभी पावा में मरे थे। उनके मरने पर निगंठ (जैन साधु) दो भाग हो, भण्डन =कलह=विवाद करते, एक-दूसरे को मुख रूपी शक्ति से छेदते विहर रहे थे—'तू इस धर्म-विनय को नहीं जानता, मैं इस धर्म-विनय को जानता हूँ।' 'तू क्या इस धर्म-विनय को जानेगा, तू मिथ्यारूढ़ है, मैं सत्यारूढ़ हूँ।' 'मेरा (कथन अर्थ) सहित है, तेरा अ-सहित है।' 'तू ने पूर्व बोलने (की बात) को पीछे बोला।' 'तेरा (वाद) बिना विचार का उलटा है।' 'तू ने वाद रोपा, तू निग्रह-स्थान में आ गया।' 'जा, वाद से छूटने के लिए फिरता फिर।' 'यदि सकता है, तो समेट।' नातपुत्तीय निगंठों में मानो युद्ध (=वध) ही हो रहा था।

"निगंठ के श्रावक (शिष्य) जो गृही श्वेत वस्त्रधारी थे, वे भी नातपुत्तीय निगंठों में (वैसे ही) निर्विण्ण=विरक्त-प्रतिवाण-रूप थे, जैसे कि (नातपुत्त के) दुर्-आख्यात (=ठीक से न कहे गए), दुष्प्रवेदित (=ठीक से न साक्षात्कार किये गए), अनैर्याणिक (=पार न लगाने वाले), अन्-उपशम-संवर्तनिक (=न शान्तिगामी), अ-सम्यक्-सम्बुद्ध-प्रवेदित (=किसी बुद्ध से न जाने गए), प्रतिष्ठा (=नींव)-रहित, भिन्नस्तूप, आश्रय-रहित धर्म-विनय में (थे)।

"तब चुन्द श्रमणोद्देश पावा में वर्षावास कर, जहाँ सामगाम था, जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनन्द को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे चुन्द श्रमणोद्देश ने आयुष्मान् आनन्द से कहा—'भन्ते! निगंठ नातपुत्त अभी-अभी पावा में मरे हैं। उनके मरने पर ... नातपुत्तीय निगंठों में मानो युद्ध ही हो रहा है। ०आश्रय-रहित धर्म-विनय में (थे)।' ऐसा कहने पर आयुष्मान् आनन्द ने चुन्द श्रमणोद्देश से कहा—'आवुस चुन्द! भगवान् के दर्शन के लिए यह बात भेंट-रूप है। आओ, आवुस चुन्द! जहां भगवान् हैं, वहाँ चलें। चलकर यह बात भगवान् को कहें'।"

" 'अच्छा भन्ते!' "

" 'तब आयुष्मान् आनन्द और चुन्द श्रमणोद्देश, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गए, जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गए। एक ओर बैठे हुए

आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् को कहा—'भन्ते! यह चुन्द श्रमणोद्देश ऐसा कह रहे हैं—'भन्ते! निगंठ नातपुत्त अभी-अभी पावा में मरे हैं।' तब भन्ते! मुझे ऐसा होता है, भगवान् के बाद भी (कहीं) संघ में ऐसा ही विवाद मत उत्पन्न हो। वह विवाद बहुत जनों के अहित के लिए, बहुत जनों के असुख के लिए, बहुत जनों के अनर्थ के लिए, देव-मनुष्यों के अहित और दुःख के लिए (होगा)'।"

"तो क्या मानते हो आनन्द! मैंने साक्षात्कार कर जिन धर्मों का उपदेश किया, जैसे कि··········आनन्द! क्या इन धर्मों में दो भिक्षुओं का भी अनेक मत (दिखता) है?"

"भन्ते! भगवान् ने जो यह धर्म साक्षात्कार कर उपदेश किए हैं, जैसे कि···इन धर्मों में भन्ते! मैं दो भिक्षुओं का भी अनेक मत नहीं देखता। लेकिन भन्ते! जो पुद्गल भगवान् के आश्रय से विहरते हैं, वे भगवान् के न रहने के बाद, संघ में आजीव (=जीविका) के विषय में, प्रातिमोक्ष (=भिक्षु-नियम) के विषय में विवाद पैदा कर सकते हैं। वह विवाद बहुत जनों के अहित के लिए,······ होगा।"[1]

(२) "ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् शाक्य (देश) में वेधञ्ञा नामक शाक्यों के आम्रवन प्रासाद में विहार कर रहे थे।

"उस समय निगंठ नातपुत्त (=तीर्थंकर महावीर) की पावा में हाल ही में मृत्यु हुई थी। उनके मरने पर निगंठों में फूट हो गई थी, दो पक्ष हो गए थे। लड़ाई चल रही थी, कलह हो रहा था। वे लोग एक-दूसरे को वचन रूपी बाणों से वेधते हुए विवाद करते थे—'तुम इस धर्म-विनय········'विरक्त हो रहे थे।

"तब चुन्द श्रमणोद्देश पावा में वर्षावास कर जहाँ सामगाम था और जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गए। बैठ गए। "बोले—भन्ते! निगंठ नातपुत्त की अभी हाल में पावा में मृत्यु·········विरक्त हो रहे थे।'

"ऐसा कहने पर आयुष्मान् आनन्द बोले—'आवुस चुन्द! यह कथा भेंट रूप है। आओ, आवुस चुन्द! जहाँ भगवान् हैं, वहाँ चलें, चलकर यह बात भगवान् से कहें।'

---

१. मज्झिम-निकाय, सामगाम सुत्तन्त, ३।१।४

"'बहुत अच्छा' कह चुन्द ने उत्तर दिया।

"तब आयुष्मान् आनन्द और चुन्द श्रमणोद्देश जहाँ भगवान् थे, वहाँ गए। एक ओर बैठ गए।..........आयुष्मान् आनन्द बोले—'भन्ते! चुन्द ऐसा कहता है—निगंठ नातपुत्त..........पावा में..........।'

"चुन्द! जहाँ शास्ता (गुरु), सम्यक् सम्बुद्ध नहीं होता, धर्म दुराख्यात होता है..........।'

"अतः चुन्द! जिस धर्म को मैंने बोधकर तुम्हें उपदेश किया है, उसे सभी मिल-जुलकर ठीक समझें-बूझें, विवाद न करें ।"[1]

(३) "ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् पाँच सौ भिक्षुओं के महा-भिक्षु-संघ के साथ मल्ल (देश) में चारिका करते, जहाँ पावा नामक मल्लों का नगर है, वहाँ पहुँचे। वहाँ पावा में भगवान् चुन्द कर्म्मार-पुत्र के आम्रवन में विहार करते थे।

"उस समय पावा-वासी मल्लों का ऊँचा, नया, संस्थागार (प्रजातंत्र-भवन) हाल ही में बना था, (वहाँ अभी) किसी श्रमण या ब्राह्मण या किसी मनुष्य ने वास नहीं किया था। पावा-वासी मल्लों ने सुना—'भगवान् मल्ल में चारिका करते पावा में पहुँचे हैं और पावा में चुन्द कर्म्मार-(=सोनार) पुत्र के आम्रवन में विहार करते हैं।' तब पावा-वासी मल्ल जहाँ भगवान् थे, वहाँ पहुँचे। पहुँचकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गए। एक ओर बैठे पावा-वासी मल्लों ने भगवान् से कहा—'भन्ते! यहाँ पावा-वासी मल्लों का ऊँचा (उब्भतक) नया संस्थागार...अभी बना है। भन्ते! भगवान् उसका प्रथम परिभोग करें। भगवान् के पहले परिभोग कर लेने पर, पीछे पावा-वासी मल्ल परिभोग करेंगे, वह पावा-वासी मल्लों के लिए दीर्घ रात्र (=चिरकाल) तक हित-सुख के लिए होगा।'

"भगवान् ने मौन रहकर स्वीकार किया।

"तब भगवान् (वस्त्र) पहिनकर पात्र-चीवर ले भिक्षु-संघ के साथ, जहाँ संस्थागार था, वहाँ गए। जाकर......बैठे। भिक्षु-संघ भी......बैठा। पावा-वासी मल्ल भी...बैठे। तब भगवान् ने पावा-वासी मल्लों को बहुत रात तक धार्मिक

---

१. दीघनिकाय, पासादिक सुत्त, ३।६

कथा से संदर्शित=समापदित, समुत्तेजित, संप्रहर्षित कर विसर्जित किया। 'वाशिष्ठो! रात तुम्हारी वीत गई, अव तुम जिसका काल समझो (वैसा करो)।'

" 'अच्छा भन्ते!'···पावा-वासी मल्ल आसन से उठ कर अभिवादन कर चले गए।

"तव मल्लों के जाने के थोड़ी ही देर वाद, भगवान् ने शांत (=तुष्णी-भूत) भिक्षु-सघ को देख, आयुष्मान् सारिपुत्र को आमंत्रित किया—'सारिपुत्र! भिक्षु-संघ स्त्यान-मृद्ध-रहित है, सारिपुत्र! भिक्षुओं को धर्म-कथा कहो; मेरी पीठ अगिया रही है, मैं लेटूंगा।'

"आयुष्मान् सारिपुत्र ने भगवान् को 'अच्छा भन्ते!' कह उत्तर दिया।

"तव भगवान् ने चोपेती संघाटी विछवा, दाहिनी करवट के वल, पैर, पर पैर रख, स्मृति-संप्रजन्य के साथ उत्थान—संज्ञा मन में कर, सिंह-शय्या लगाई। उस समय निगंठ नातपुत्त (=तीर्थंकर महावीर) अभी-अभी पावा में काल किए थे। उनके काल करने से निगंठों में फूट पड़ दो भाग हो गए थे। वे भंडन=कलह=विवाद में पड़ एक दूसरे को ·········जो भी निगंठ नातपुत्त के श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थ शिष्य··· ·· विरक्त हो रहे थे।

"आयुष्मान् सारिपुत्र ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया—'आवुसो! निगंठ नातपुत्त ने पावा में अभी-अभी काल किया है। उनके काल करने से० निगंठ० भंडन=कलह=विवाद करते—जो श्वेत वस्त्रधारी गृही शिष्य हैं, वे भी नातपुत्तीय निगंठों में वैसे ही निर्विण्ण··· आश्रय रहित धर्म में। किन्तु आवुसो! हमारे भगवान् का यह धर्म सु-आख्यात (=ठीक से कहा गया), सु-प्रवेदित (=ठीक से साक्षात्कार किया गया), नैर्वाणिक (दुःख से पार करने वाला), उपशम-संवर्तनिक (=शान्ति-प्रापक), सम्यक्-सम्बुद्ध-प्रवेदित(=बुद्ध द्वारा जाना गया) है। यहाँ सवको ही अ-विरुद्ध वचन वाला होना चाहि, विवाद नहीं करना चाहिए; जिससे कि यह ब्रह्मचर्य अध्वनिक (=चिरस्थायी हो), और वह वहुजन हितार्थ ··· सुख के लिए हो।"

" तव भगवान् ने उठकर आयुष्मान् सारिपुत्र को आमंत्रित किया।" साधु, साधु सारिपुत्र! सारिपुत्र, तूने भिक्षुओं को अच्छा संगीति-पर्याय (एकता का ढंग) उपदेशा।"

"आयुष्मान् सारिपुत्र ने यह कहा, शास्ता (=बुद्ध) इससे सहमत

हुए। सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओं ने (भी) आयुष्मान् सारिपुत्र के भाषण का अभिवादन किया।"[1]

उक्त तीनों प्रकरणों की आत्मा एक है, पर उनके ऊपर का ढांचा कुछ भिन्न है। प्रथम प्रकरण में बुद्ध इस संवाद-श्रवण के बाद आनन्द को उपदेश करते हैं और दूसरे में चुन्द को; दोनों उपदेशों का शब्द-विन्यास कुछ भिन्न है; पर झुकाव एक ही है। पहले और दूसरे में यह संवाद बुद्ध सामगाम में सुनते हैं और वहीं उपदेश करते हैं। तीसरे प्रकरण में सारिपुत्र पावा में भिक्षुओं को महावीर-निर्वाण की बात कहकर उपदेश करते हैं। कुछ एक लेखकों ने माना है कि इन प्रकरणों में विरोधाभास है; अतः ये प्रामाणिक नहीं होने चाहिए। वस्तु-स्थिति यह है—इतिहास किसी भी शास्त्र के समुल्लेख को अक्षरशः मानकर नहीं चला करता। किसी भी समुल्लेख का मूल हार्द यदि असंदिग्ध है, तो इतिहास उसे ले लेता है। सच बात तो यह है कि तीनों प्रकरणों के अन्तर परस्पर विरोधी हों, ऐसी बात भी नहीं है। पहले प्रकरण में उपदेशपात्र आनन्द को और दूसरे प्रकरण में चुन्द को जो बताया गया है, उसके अनेक बुद्धिगम्य कारण हो सकते हैं। हो सकता है, दोनों ने वह उपदेश एक साथ ही श्रवण किया हो और संकलनकारों ने अपनी-अपनी बुद्धि से एक-एक को महत्त्व दे दिया हो। हो सकता है, किंचित् कालान्तर से बुद्ध ने दोनों को पृथक्-पृथक् यह उपदेश दिया हो। तीसरा प्रकरण अपने आप में स्वतंत्र है ही तथा वह तो प्रत्युत पहले दो प्रकरणों का और पुष्टिकारक बन जाता है। पावा में यह घटना घटित हुई थी, अतः पावा में आने पर सारिपुत्र का उस घटना को याद करना नितान्त स्वाभाविक ही हो सकता है।

भगवान् महावीर के निर्वाण-प्रसंग पर अनुयायियों में मतभेद की चर्चा तीनों ही प्रकरणों में की गई है। जैन परम्परा इस बात की कोई स्पष्ट साक्षी नहीं देती। हो सकता है, भगवान् महावीर के उत्तराधिकार के विषय में परस्पर चिन्तन चला हो। इन्द्रभूति (गौतम स्वामी) प्रथम गणधर थे। सामान्यतया उत्तराधिकार उन्हें मिलना चाहिए था। पर वह पंचम गणधर सुधर्मा स्वामी को यह कह कर मिला कि केवली तीर्थंकरों के उत्तराधिकारी नहीं

---

१. दीघ निकाय, संगीति-परियाय सुत्त, ३।१

बनते । सम्भव है, यह चिन्तन भी उस निष्कर्ष से निकला हो । यह भी असम्भव तो नहीं माना जा सकता कि गौतम स्वामी के अनुयायी-साधुओं और सुधर्मा स्वामी के अनुयायी-साधुओं में इसी विषय पर यत्किंचित् विवाद न हुआ हो । इसकी तनिक-सी झलक हमें इस बात से भी मिलती है कि श्वेताम्बर परम्पराओं में भगवान् महावीर के प्रथम पट्टधर सुधर्मा स्वामी को माना जाता है, जबकि दिगम्बर परम्पराओं में गौतम स्वामी को भगवान् महावीर का प्रथम पट्टधर माना जाता है । बौद्ध प्रकरणों में जो 'श्वेत वस्त्रधारी' शब्द आया है, वह भी 'अचेल' और 'सचेल' निर्ग्रन्थों के संघर्ष को इंगित करता है ।[1] हो सकता है, बौद्धों ने उक्त तीनों प्रकरणों को बहुत बढ़ावा दे दिया हो । यह होता ही है कि एक सम्प्रदाय की तनिक-सी घटना को प्रतिस्पर्धी सम्प्रदाय के लोग अतिरंजित करके ही बहुधा व्यक्त करते हैं । श्री धर्मानन्द कोशाम्बी ने जैन आगमों में वर्णित गोशालक के न्यूनता सूचक वर्णन को बहुत ही अतिरंजित माना है ।[2]

डा० जेकोबी ने उक्त प्रकरणों को इसलिए भी अप्रामाणिक माना है कि इनमें से कोई समुल्लेख महापरिनिब्बाण सुत्त में नहीं है, जिसमें कि भगवान् बुद्ध के अन्तिम जीवन-प्रसंगों का ब्यौरा मिलता है ।[3] डा० जेकोबी के इस तर्क से यह तो प्रमाणित नहीं होता कि ये तीनों प्रकरण असंगत हैं, किन्तु यह अवश्य प्रमाणित हो जाता है कि ये प्रकरण बुद्ध-निर्वाण-समय के निकट के नहीं हैं ।

मुनि कल्याण विजयजी ने उक्त तीनों प्रकरणों को एक भ्रान्ति मात्र का परिणाम माना है । उन्होंने जहाँ महावीर के निर्वाण-प्रसंग को उनकी रुग्णावस्था में हुई अफवाह माना है, वहाँ उन्होंने निर्वाणान्तर बताये गये निर्ग्रन्थों के पारस्परिक कलह को जमालि की घटना के साथ जोड़ा है उनका कहना है : "निर्ग्रन्थों के द्वैधीभाव और एक-दूसरे की खटपट का बौद्धों ने जो वर्णन किया है, वह भगवती सूत्र में वर्णित जमालि और गौतम इन्द्रभूति

---

१. उक्त समाधान आनुमानिक है, किन्तु जो संकेत इससे उभरे हैं, हो सकता है, गहराई में जाने से श्वेताम्बर और दिगम्बर के भेद का मूल भी यहीं कहीं निकल जाये । शोधशील विचारकों के लिए यह ध्यातव्य है ।

२. देखें, पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म

३. श्रमण, वर्ष १३, अंक ६, पृ० १३

के विवाद का विकृत स्वरूप है।"[१] भगवान् महावीर के साथ गोशालक का विवाद श्रावस्ती नगरी में होता है और जमालि व इन्द्रभूति का शास्त्रार्थ चम्पा नगरी में होता है।[२] इन दोनों घटनाओं के न क्षेत्र एक हैं, न काल एक; तथा न इस घटनाओं में परस्पर कोई विषय का भी सम्बन्ध है। ऐसी स्थिति में यह संगति उक्त तीनों प्रकरणों के भ्रान्ति मात्र प्रमाणित करने में यत्किंचित् भी समर्थ नहीं है।

तीनों प्रकरणों में निर्वाण तथा विवाद का पावा में घटित होने का स्पष्ट उल्लेख है। श्रावस्ती और चम्पा की घटनाओं का वहाँ क्या सम्बन्ध जुड़ सकता है? भगवान् महावीर जैसे युगपुरुषों की निर्वाण की कोई असत्य बात उठे और वह चिरकाल तक चलती ही रहे, यह कैसे सम्भव हो सकता है? कालान्तर से सारिपुत्र पावा में ही आकर उस घटना को दोहराते हैं। तब तक यदि महावीर का निर्वाण हुआ ही नहीं था, तो क्या पावा के लोगों से उनको यह अवगति नहीं हो गई होती? किन्हीं उदन्तों का ऐसा सामञ्जस्य 'संगति' शब्द का सदुपयोग नहीं कहा जा सकता।

इन तीनों प्रकरणों की वास्तविकता में हमें इसलिए भी सन्देह नहीं करना चाहिए कि जैन आगमों में महावीर-निर्वाण के सम्बन्ध से कोई विरोधी उल्लेख नहीं मिल रहा है। जैन आगमों में यदि महावीर और बुद्ध के निर्वाण की पूर्वापरता के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट उल्लेख होता, तो हमें उन तीन प्रकरणों की वास्तविकता में फिर भी सन्देह हो सकता था। बौद्ध शास्त्रों में भी तीन प्रकरणों के अतिरिक्त ऐसा कोई भी चौथा प्रकरण होता, जो महावीर-निर्वाण से पूर्व बुद्ध-निर्वाण की बात कहता, तो हमें गम्भीरता से सोचना होता। जो प्रकरण अपने आप में असंदिग्ध हैं, उन्हें तथ्य-निर्णय के लिए प्रमाणभूत मान लेना जरा भी असंगत नहीं है।

महावीर की ज्येष्ठता

उक्त तीन प्रकरणों के अतिरिक्त और भी अनेक ऐसे प्रसंग बौद्ध साहित्य में

---

१. वीर-निर्वाण-संवत् और जैन काल-गणना, पृ० १२-१३

२. भगवती सूत्र, शतक ९, उ० ३३

उपलब्ध होते हैं, जो बुद्ध का छोटा होना और महावीर का ज्येष्ठ होना प्रमाणित करते हैं। अब तक के अधिकांश विद्वानों ने केवल तीन प्रकरणों पर ही आलोडन-विलोडन किया है। तत्सम्बन्धी अन्य प्रसंगों पर न जाने उनका ध्यान क्यों नहीं गया, जिनमें बुद्ध स्वयं अपने को तात्कालिक सभी धर्मनायकों में छोटा स्वीकार करते हैं। वे प्रकरण क्रमशः निम्न हैं :

(१) "ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे, तब कोशल राजा प्रसेनजित् जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर कुशल-प्रश्न पूछ, एक ओर बैठ...... भगवान् से बोला—"गौतम! आप भी तो, अनुत्तर (=सर्वोत्तम) सम्यक् सम्बोधि (=परमज्ञान) को जान लिया, यह दावा करते हैं।"

"महाराज! अनुत्तर सम्यक् सम्बोधि को जान लिया, यह ठीक से बोलने पर मेरे ही लिए बोलना चाहिए।"

"हे गौतम! वह, जो श्रमण-ब्राह्मण संघ के अधिपति, गणाधिपति, गण के आचार्य, ज्ञात (=प्रसिद्ध), यशस्वी, तीर्थंकर (=पथ चलाने वाले), बहुत जनों द्वारा साधु-सम्मत (=अच्छे माने जाने वाले) हैं। जैसे—पूर्ण काश्यप, मक्खली (=मस्करी) गोशाल, निगंठ नातपुत्त (निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र), संजय बेलट्ठिपुत्त, प्रकुध कात्यायन, अजित केशकम्बली, वह भी '(क्या आप) अनुत्तर सम्यक् सम्बोधि को जान लिया, यह दावा करते हैं?—पूछने पर अनुत्तर० सम्बोधि को जान लिया, यह दावा नहीं करते। फिर जन्म से अल्प वयस्क और प्रव्रज्या में नये, आप गौतम के लिए तो क्या कहना है?"

"महाराज! चार को अल्प वयस्क (दहर) न जानना चाहिए, छोटे (=दहर) हैं (समझकर) परिभव (=तिरस्कार) न करना चाहिए। कौन से चार, महाराज! क्षत्रिय को दहर न जानना चाहिए० सर्प को० अग्नि को० भिक्षु को०। इन चार को महाराज! दहर न समझना चाहिए। यह कह कर शास्ता ने फिर यह भी कहा—"कुलीन, उत्तम यशस्वी, क्षत्रिय को दहर० करके, आदमी उसका अपमान और तिरस्कार न करे। हो सकता है, राज्य प्राप्त कर, वह मनुजेन्द्र क्षत्रिय, क्रुद्ध हो राजदण्ड से पराक्रम करे। इसलिए अपने जीवन की रक्षा के लिए उससे अलग रहना चाहिए। गाँव या अरण्य में जहाँ साँप को देखे, दहर करके आदमी उसका अपमान और तिरस्कार न करे।

नाना प्रकार के रूपों से उरग (साँप) तेज में विचरता है। वह समय पाकर नर-नारी, बालक को डस लेगा। इसलिए अपने जीवन की रक्षा के लिए उससे अलग रहना चाहिए। बहुभक्षी ज्वाला-युक्त पावक=कृष्णवर्त्मा (=काले मार्ग वाला) को दहर करके, आदमी उसका अपमान और तिरस्कार न करे। उपादान (=सामग्री) पा, बड़ी होकर वह आग समय पाकर नर-नारी को जला देगी। इसलिए अपने जीवन की रक्षा के लिए उससे अलग रहना चाहिए। पावक=कृष्णवर्त्मा अग्नि वन को जला देता है। (लेकिन) अहोरात्र बीतने पर वहाँ अंकुर उत्पन्न हो जाते हैं। लेकिन जिसको सदाचारी भिक्षु (अपने) तेज से जलाता है, उसके पुत्र-पशु (तक) नहीं होते, दायाद भी धन नहीं पाते। सन्तानरहित, दायाद-रहित, शिर कटे-ताल जैसा वह होता है। इसलिए पंडितजन अपने हित को जानते हुए, भुजंग, पावक, यशस्वी क्षत्रिय और शील सम्पन्न (=सदाचारी) भिक्षु के (साथ) अच्छी तरह बर्ताव करे।"[१]

(२) "एक बार भगवान् बुद्ध राजगृह के वेणुवन में कलंदक निवाप में रहते थे। एक बार एक देव ने आकर सभिय को कई प्रश्न सिखाये और बोला कि जो तेरे इन प्रश्नों का उत्तर दे, उनका ही तू शिष्य होना। यह देव पूर्व जन्म में सभिय परिव्राजक का सगा था। सभिय श्रमण-ब्राह्मण, संघनायक, गणनायक, गणाचार्य, प्रसिद्ध, यशस्वी, तीर्थंकर और बहुजन साधु-सम्मत—पूरणकाश्यप, मक्खली गोशाल, अजित केशकम्बली, प्रकुध कात्यायन, संजय वेलट्ठिपुत्त और निगंठ नातपुत्त आदि के पास जाकर प्रश्न पूछता है। वे प्रश्नों का जवाब न दे सकने से कोप, द्वेष और दौर्मनस्य प्रकट करते हैं और उलटा सभिय परिव्राजक को ही प्रश्न करने लगते हैं। इससे सभिय परिव्राजक के मन में आया कि जब ये भगवान् श्रमण-ब्राह्मण भी प्रश्नों का उत्तर न देकर दौर्मनस्य प्रकट करते हैं, तो प्रव्रज्या छोड़ फिर गृहस्थ बनना ही ठीक है। फिर उसके मन में आया कि श्रमण गौतम भी संघनायक, गणनायक, गणाचार्य, प्रसिद्ध, यशस्वी, तीर्थंकर और अनेक मनुष्यों को साधुसम्मत है; अतः उसके पास जाकर प्रश्न पूछना ठीक है। फिर उसके मन में आया कि भगवन्त श्रमण-ब्राह्मण जीर्ण, वृद्ध, महल्लक, उत्तरावस्था को प्राप्त, वयोतीत, स्थविर और चिर-काल के प्रव्रजित, संघनायक, गणनायक, गणाचार्य, प्रसिद्ध, यशस्वी, तीर्थंकर

---

१. संयुत्त निकाय, दहरसुत्त, ३।१।१

अनेक लोगों को साधु-सम्मत, पूरण काश्यप ...... निगंठ नातपुत्त[1] भी प्रश्न पूछने पर उत्तर नहीं देकर कोप, द्वेष, दौर्मनस्य प्रकट करते हैं और उल्टा मुझे प्रश्न पूछते हैं तो फिर ये प्रश्न श्रमण गौतम से पूछने पर वह मुझे जवाब दे सकेंगे ? श्रमण गौतम तो आयु में युवान हैं और उन्होंने हाल ही में प्रव्रज्या ली है[2] । फिर सभिय परिव्राजक के मन में आया कि श्रमण तरुण हो तो भी उसकी अवज्ञा या अवगणना नहीं करनी चाहिए। कोई-कोई तरुण श्रमण ही महा ऋद्धिमान महानुभाव होता है । अतः श्रमण गौतम के पास जा, उससे भी ये प्रश्न पूछने ठीक हैं। उसके बाद सभिय परिव्राजक ने राजगृह के वेणुवन में कलदक निवाप में बुद्ध भगवान् के पाँस जा .... वहाँ जाने के पूर्व हृदय में जो ऊहापोह हुआ वह प्रश्न-कह पूछा।"[3]

(३) "ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृह में जीवक कौमार-भृत्य के आम्रवन में साढ़े बारहसौ भिक्षुओं के महाभिक्षु-संघ के साथ विहार करते थे।

"उस समय पूर्णमासी के उपोसथ के दिन चातुर्मास की कौमुदी (=आश्विन पूर्णिमा) से पूर्ण पूर्णिमा की रात को राजा मागध अजातशत्रु वैदेहीपुत्र, राजामात्यों से घिरा, उत्तम प्रासाद के ऊपर बैठा हुआ था। तब राजा० अजातशत्रु० ने उस दिन उपोसथ (पूर्णिमा) का उदान कहा—'अहो ! कैसी रमणीय चांदनी रात है ! कैसी सुन्दर चांदनी रात है !! कैसी दर्शनीय चांदनी रात है !!! कैसी प्रासादिक चांदनी रात है !!! कैसी लक्षणीय चांदनी रात है !!! किस श्रमण या ब्राह्मण का सत्संग करें, जिसका सत्संग हमारे चित्त को प्रसन्न करे।'

"ऐसा कहने पर एक राजमंत्री ने मगधराज अजातशत्रु वैदेहीपुत्र से यह

---

१. समणब्राह्मणा, जिण्णा, वुड्ढा महल्लका, अद्धगता, वयो अनुप्पत्ता, थेरारत्तञ्ञू, चिर पब्बजित्ता ... .. पूरणोकस्सपो ..... पे निगण्ठो नातपुत्तो ।

२. ...किं पन मे समणो गोतमो इमे पञ्हे पुट्ठो व्याकरिस्सति । समणो हि गोतमो दहरो चेव जातिया नवो च पब्बज्जायाति ।

—सुत्तनिपात

३. सुत्तनिपात, सभिय सुत्त, पृ० १०८-११०

कहा—'महाराज ! यह पूर्ण काश्यप संघ-स्वामी=गण-अध्यक्ष, गणाचार्य, ज्ञानी, यशस्वी, तीर्थंकर (=मतस्थापक), बहुत लोगों से सम्मानित, अनुभवी, चिरकाल का साधु व वयोवृद्ध है। महाराज ! उसी पूर्ण काश्यप से धर्म-चर्चा करें। पूर्ण काश्यप के साथ थोड़ी ही धर्म-चर्चा करने से चित्त प्रसन्न हो जायेगा। उसके ऐसा कहने पर मगधराज अजातशत्रु वैदेहिपुत्र चुप रहा।'

"दूसरे मंत्री ने मगधराज० से कहा—'महाराज ! यह मक्खली गोशाल संघ-स्वामी०। उसके ऐसा कहने पर मगधराज० चुप रहा।'

"दूसरे मंत्री ने मगधराज० से कहा—'महाराज ! यह अजितकेश कम्बल संघ-स्वामी०।' उसके ऐसा कहने पर मगधराज० चुप रहा।

"दूसरे मंत्री ने भी०—'महाराज ! यह प्रकुध कात्यायन संघ-स्वामी०।' उसके ऐसा कहने पर मगधराज० चुप रहा।

"दूसरे मंत्री ने भी मगधराज०—'महाराज ! यह संजय वेलट्ठिपुत्त संघ-स्वामी०।' उसके ऐसा कहने पर मगधराज०।

"दूसरे मंत्री ने भी मगधराज०—'महाराज ! यह निगण्ठनाथपुत्त (नातपुत्त—नाटपुत्त) संघ-स्वामी०।' उसके ऐसा कहने पर मगधराज०।

"उस समय जीवक कौमार-भृत्य राजा मागध वैदेहिपुत्र अजातशत्रु के पास ही चुपचाप बैठा था। तब राजा० अजातशत्रु ने जीवक कौमार-भृत्य से यह कहा—'सौम्य ! जीवक ! तुम बिल्कुल चुपचाप क्यों हो ?'

"देव ! ये भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध मेरे आम के बगीचे में साढ़े बारह सौ भिक्षुओं के बड़े संघ के साथ विहार कर रहे हैं। उन भगवान् गौतम का ऐसा मंगल यश फैला हुआ है--'वह भगवान् अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध (=परमज्ञानी), विद्या और आचरण से युक्त, सुगत (=सुन्दर गति को प्राप्त) लोकविद्, पुरुषों को दमन करने (=सन्मार्ग पर लाने) के लिए अनुपम चाबुक सवार, देव-मनुष्यों के शास्ता (=उपदेशक) बुद्ध (=ज्ञानी) भगवान् हैं। महाराज ! आप उनके पास चलें और धर्म-चर्चा करें। उन भगवान् के साथ धर्मालाप करने से कदाचित् आपका चित्त प्रसन्न हो जायेगा।'"[1]

ये तीन प्रकरण भी बुद्ध से महावीर का ज्येष्ठत्व प्रमाणित करने के

---

१. दीघनिकाय सामञ्ञफल सुत्त, १।२

लिए इतने स्पष्ट हैं कि इन पर कोई युक्ति या संगति जोड़ने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। इस प्रकार, तीन प्रकरण महावीर का निर्वाण प्रमाणित करते हैं और अन्य तीन प्रकरण उनका ज्येष्ठत्व प्रमाणित करते हैं। ज्येष्ठत्व भी केवल वयोमान की दृष्टि से ही नहीं, अपितु ज्ञान की दृष्टि से, प्रभाव की दृष्टि से और प्रव्रज्या-काल की दृष्टि से। ये समुल्लेख स्वयं बोलते हैं कि जब बुद्ध ने अपना धर्मोपदेश प्रारम्भ किया था, तब तक महावीर इस दिशा में बहुत-कुछ कर चुके थे।

उक्त प्रकरणों की सत्यता का एक प्रमाण यह भी है कि यहाँ बुद्ध को छोटा स्वीकार किया गया है। सभी स्थलों में बुद्ध को आयु, प्रव्रज्या व ज्ञान-लाभ की दृष्टि से पूर्वकालिक और बड़ा कहा जाता, तब तो फिर भी आशंका खड़ी की जा सकती थी कि सम्भवतः बौद्ध शास्त्रकारों ने अपने धर्म-नायक की महिमा बढ़ाने के लिए भी ऐसा कर दिया हो, किन्तु अपने धर्मनायक को छोटा स्वीकार करना तो किसी साम्प्रदायिक अहम् का पोषक नहीं होता।

प्रतिपाद्य तथ्य की पुष्टि का एक आधार यह भी बनता है कि बौद्ध-शास्त्र महावीर के विषय में जितने मुखर हैं, जैन-शास्त्र बुद्ध के विषय में उतने ही मौन हैं। इसका भी सम्भव कारण यही है—जो नवोदित धर्मनायक होता है, वह अपने पूर्ववर्ती प्रतिस्पर्धी धर्म-नायक पर अधिक बोलता है। उसमें उसके समकक्ष होने की एक भावना होती है; अतः वह स्वयं को श्रेष्ठ और प्रतिपक्ष को अश्रेष्ठ सिद्ध करने का विशेष प्रयत्न करता है। यही स्थिति बौद्ध शास्त्रों में समुल्लिखित महावीर-सम्बन्धी और जैन-धर्म-सम्बन्धी अनेकानेक विवरणों में प्रकट होती है।[1] जैन-शास्त्रों में बौद्ध धर्म के प्रवर्तक के रूप में बुद्ध का कहीं नामोल्लेख तक नहीं मिलता। यह भी इसी बात का संकेत है कि जो स्वयं प्रभाव-सम्पन्न हो जाते हैं, वे नवोदित पन्थ को सहसा ही महत्त्व नहीं दिया करते।

जैन-शास्त्रों की मौन और बौद्ध-शास्त्रों की मुखरता का अन्य सम्भव कारण यह है कि महावीर-वाणी का द्वादशांगी के रूप में संकलन, महावीर के

---

१. विस्तार के लिए देखें, लेखक की अन्य कृति 'आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन' में 'त्रिपिटक साहित्य में निगंठ व निगंठ नातपुत्त' प्रकरण

बोधि-प्राप्ति के अनन्तर ही गणधरों द्वारा हो चुका था। बुद्ध महावीर के उत्तरवर्ती थे, अतः उन शास्त्रों में बुद्ध के जीवन के विषय में चर्चाएँ कैसे होतीं ? यदि बुद्ध पूर्ववर्ती होते, तो जैन-शास्त्रों में उनकी चर्चा आए विना ही कैसे रहतीं ?[1] बौद्ध पिटकों का संकलन बुद्ध-निर्वाण के अनन्तर ही अर्हत् शिष्यों द्वारा होता है। बुद्ध महावीर से उत्तरवर्ती थे, अतः उनमें महावीर के जीवन-प्रसगों का उल्लिखित होना स्वाभाविक है ही।

समय-विचार

इस प्रकार उक्त तथ्यों के आधार से हम इस निष्कर्ष पर तो असंदिग्ध रूप से पहुँच ही जाते हैं कि महावीर बुद्ध से वयोवृद्ध और पूर्व-निर्वाण-प्राप्त थे। विवेचनीय विषय रहता है—उनकी समसामयिकता का, अर्थात् वे कितने वर्ष एक-दूसरे की विद्यमानता में जीये। पर यह जान लेना तभी सम्भव है, जब उनके जीवन-वृत्तों को संवत्सर और तिथियों में बाँधा जाए। आगमों और त्रिपिटकों में उनके जन्म व निर्वाण-सम्बन्धी महीनों व तिथियों का उल्लेख मिलता है। पर आज की संवत् या सन् पद्धति से उनके जन्म और निर्वाण के सम्बन्ध में कहीं कुछ नहीं मिलता। वह इसीलिए कि सम्भवतः उस समय किसी व्यवस्थित संवत्सर का प्रचलन था ही नहीं। दोनों युगपुरुषों की समसामयिकता के निर्णय में पूर्वापर के अतिरिक्त उल्लेखों से ही काम चलाना होता है। पहले हमें महावीर के तिथि-क्रम पर विचार करना होगा, क्योंकि अपेक्षाकृत बुद्ध के तिथि-क्रम से, वह अधिक स्पष्ट और असंदिग्ध है।

महावीर का तिथि-क्रम

पिछले प्रकरणों में यह भलीभाँति बताया जा चुका है कि महावीर-

---

१. सूत्रकृतांग आदि सूत्रों में बौद्ध मान्यताओं से सम्बन्धित मीमांसा नगण्य रूप से मिलती है। द्वादशांगी के मूल स्वरूप में भी पूर्वधर आचार्यों द्वारा समय-समय पर आवश्यक परिवर्तन किया जाता रहा है, अतः बौद्ध-धर्म-सम्बन्धी मीमांसा उक्त तथ्य में बाधक नहीं बनती।

निर्वाण का असंदिग्ध समय ई० पू० ५२७ का है।[1] इस विषय में एक अन्य प्रमाण यह भी है कि इतिहास के क्षेत्र में सम्राट् चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण ई० पू० ३२२ माना गया है।[2] इतिहासकार मानते हैं कि इतिहास के इस अन्धकारपूर्ण वातावरण में यह एक प्रकाशस्तम्भ है।[3] यह समय सर्वमान्य और प्रामाणिक है। इसे ही केन्द्र-बिन्दु मानकर इतिहास शताब्दियों पूर्व और शताब्दियों पश्चात् की घटनाओं का समय पकड़ता है। जैन परम्परा में मेरुतुंग की विचार श्रेणि, तित्थोगाली पइन्नय तथा तित्थोद्धार प्रकीर्ण आदि प्राचीन ग्रन्थों में चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण महावीर-निर्वाण के २१५ वर्ष पश्चात् माना गया है। वह राज्यारोहण उन्होंने अवन्ती का माना है। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने पाटलिपुत्र (मगध) राज्यारोहण के १० वर्ष पश्चात्

---

१. अनेक अधिकारी इतिहासज्ञों व विद्वानों ने इसी तिथि को मान्य रखा है। उदाहरणार्थ—
   क—महामहोपाध्याय रायबहादुर गौरीशंकर ओझा, श्री जैन सत्य प्रकाश, वर्ष २, अंक ४-५, पृ० २१७-८१
   ख—डा० बलदेव उपाध्याय, धर्म और दर्शन, पृ० ८९
   ग—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, तीर्थंकर महावीर, भाग २, भूमिका, पृ० १९
   ग—डा० हीरालाल जैन, तत्त्व-समुच्चय, पृ० ६
   ङ—महामहोपाध्याय प० विश्वेश्वरनाथ रेऊ, भारत का प्राचीन राजवंश, खण्ड २, पृ० ४३६

२. *Chandragupta Maurya and His Times*, by Dr. Radhakumud Mukherjee, pp. 44-6 ; तथा भारत का बृहत् इतिहास, प्रथम भाग, प्राचीन भारत, ले० श्रीनेत्र पाण्डे, चतुर्थ संस्करण, पृ० २४२

३. "To these sources, Indian history is also indebted for what has been called, the sheet-anchor of its chronology, for the starting point of Indian chronology is the date of Chandragupta's accession to sovereignty."
   —*Chandragupta Maurya and His Times, by* Radha Kumud Mukherjee. p. 3

अवन्ती में अपना राज्य स्थापित किया था।[1] इस प्रकार जैन-काल-गणना और सामान्य ऐतिहासिक धारणा परस्पर संगत हो जाती है और महावीर का निर्वाण ई० पू० ३१२+२१५=ई० पू० ५२७ में होता है।

उक्त निर्वाण-समय का समर्थन विक्रम, शक, गुप्त आदि ऐतिहासिक संवत्सरों से भी होता है। विक्रम संवत् के विषय में जैन परम्परा की प्राचीन पट्टावलियों व ग्रन्थों में बताया गया है[2]—भगवान् महावीर के निर्वाण-काल

---

१. क—The date 313 B. C. for Chandragupta's accession, if it is based on correct, tradition may refer to his acquisition of Avanti in Malwa, as the chronological datum is found in averse where the Maurya king finds mention in the list of succession of Pālaka the king of Avanti.

Political History of Ancient India, by H. C. Raychoudhuri p. 295

ख—"The Jain date 313 B. C., if based on correct tradition, may refer to aquisition of Avanti (Malwa)"

—*An Advanced History of India* p. 99

ग—यद्यपि ई० पू० ३१३, चन्द्रगुप्त के राज्याभिषेक की तिथि, शुद्ध परम्परा के आधार पर अनुमानित है, परन्तु यह तिथि उनके अवन्ती अथवा मालवा के विजय का निर्देश करती है, क्योंकि उस श्लोक में, जिसमें तिथिक्रम-तालिका अंकित है, अवन्ती-शासक पालक के अनुवर्ती शासकों में चन्द्रगुप्त मौर्य की चर्चा की गई है।

—भारत का वृहत् इतिहास, श्रीनेत्र पाण्डे, पृ० २४५-१४६

२. क—जं रयणिं कालगओ, अरिहा तित्थंकरो महावीरो।
तं रयणिं अवणिवई, अहिसित्तो पालओ राया ॥१॥
सट्ठी पालयरण्णो ६०, पणवण्णसयं तु होइ नंदाणं १५५।
अट्ठसयं मुरियाणं १०८, तीस च्चिय पूसमित्तस्स ३० ॥२॥
बलमित्त-भाणुमित्त सट्ठी ६०, वरिसाणि चत्त नहवाणे।
तह गद्दभिल्लरज्जं तेरस १३ वरिस, सगस्स चउ (वरिसा) ॥३॥

श्री विक्रमादित्यश्च प्रतिबोधितस्तद्राज्यं तु श्री वीरसप्ततिचतुष्टये ४७० संजातं।

से ४७० वर्ष बाद विक्रम संवत् का प्रचलन हुआ। इतिहास की सर्वसम्मत धारणा के अनुसार विक्रम संवत् ई० पू० ५७ से प्रारम्भ होता है।[1] इससे भी

—धर्मसागर उपाध्याय-रचित तपागच्छ-पट्टावली (सटीक सानुवाद, पन्यास कल्याण विजयजी), पृ० ५०-५२

ख—विक्रमरज्जारंभा परओ सिरि वीर निव्वुई भणिया।
सुन्न मुणि वेय जुत्तो विक्कम कालउ जिण कालो॥

—विक्रम कालाज्जिनस्य वीरस्य कालो जिनकालः शून्य (०) मुनि (७) वेद (४) युक्तः। चत्वारि शतानि सप्तत्यधिक वर्षाणि श्री महावीर-विक्रमादित्ययोरन्तरमित्यर्थः। नन्वयं कालः वीरविक्रमयोः कथं गण्यते; इत्याह—विक्रमराज्यारम्भात् परतः पश्चात् श्री वीर निर्वृतिरत्र भणिता। को भावः श्री वीरनिर्वाण-दिनादनु ४७० वर्षे विक्रमादित्यस्य राज्यारम्भदिनमिति।

—विचार-श्रेणी, पृ० ३-४

ग—पुनर्मन्निर्वाणात् सप्तयधिकचतुःशतवर्षे (४७०) उज्जयिन्यां श्री विक्रमादित्यो राजा भविष्यति······स्वनाम्ना च संवत्सर प्रवृत्ति करिष्यति।

—श्री सौभाग्यपंचम्यादिपर्वकथासंग्रह, दीपमालिका व्याख्यान, पृ० ९६-९७

घ—महासुक्ख गमणाओ पालय-नंद-चंदगुत्ताइराईसु बोलीणेसु चउसय सत्तरेहिं विक्कमाइच्चो राया होहि। तत्थ सट्ठी वरिसाणं पालगस्स रज्जं, पणपण्णंसयं नंदाणं, अट्ठोत्तर सयं मोरिय वंसाणं, तीसं पूसमित्तस्स, सट्ठी वलमित्त-भाणुमित्ताणं, चालीसं नहवाहणस्स, तेरस गद्दभिल्लस, चत्तारि सगस्स। तओ विक्कमाइच्चो।

—विविधतीर्थकल्प (अपापावृहत्कल्प) पृ० ३०-३९

ङ—चउसय सत्तरि वरिसे (४७०) वीराओ विक्कमो जाओ।

—पंचवस्तुक

१. *An Advanced History of India*, p. 118; गुप्त साम्राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ० १८३

महावीर-निर्वाण का काल ५७+४७०=ई० पू० ५२७ का ही आता है।

श्वेताम्बर और दिगम्बर—दोनों ही जैन परम्पराओं की प्राचीन मान्यताओं के अनुसार शक संवत् महावीर-निर्वाण के ६०५ वर्ष व ५ महीने बाद आरम्भ होता है।[1] ऐतिहासिक धारणा से शक संवत् का प्रारम्भ ई० पू० ७८

---

१. क—जं रयणि सिद्धिगओ, अरहा तित्थंकरो महावीरो।
तं रयणिमवन्तीए, अभिसित्तो पालओ राया ॥६२०॥
पालय रण्णो सट्ठी, पुण पण्णसयं वियाणि णंदाणम्।
मुरियाणं सट्ठिसयं पणतीसा पूसमित्ताणं (त्तस्स) ॥६२१॥
वलमित्त-भाणुमित्ता सट्ठी, चत्ताय होन्ति नहसेणे।
गद्दभसयमेगं पुण, पडिवन्नो तो सगो राया ॥६२२॥
पंच य मासा पंच य वासा, छच्चेव होंति वाससया।
परिनिव्वुअस्सऽरिहतो, तो उप्पन्नो (पडिवन्नो) सगो राया ॥६२३॥
—तित्थोगाली पइन्नय

ख—श्री वीरनिर्वृतेर्वर्षैः षड्भिः पञ्चोत्तरैः शतैः।
शाकसंवत्सरस्यैषा प्रवृत्तिर्भरतेऽभवत् ॥
—मेरुतुंगाचार्य-रचित, विचार-श्रेणी,
(जैन-साहित्य-संशोधक, खण्ड २, अंक ३-४, पृ० ४)

ग—छहिं वासाण सएहिं पञ्चहिं वासेहिं पञ्चमासेहिं।
मम निव्वाण गयस्स उ उपाज्जिस्सइ सगो राया ॥
—नेमिचन्द्र-रचित, महावीर-चरियं, श्लो० २१६६, पत्र ६४-१

घ—पणछस्सयवस्सं पणमासजुदं गमिय वीर णिव्वुइदो।
सगराजो तो कक्की चदुणवतियमहिय सगमासं ॥८५०॥
—नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती-रचित, त्रिलोकसार

ङ—वर्षाणां षट्शतीं त्यक्त्वा पंचाग्रां मासपंचकम्।
मुक्तिं गते महावीरे शकराजस्ततोऽभवत् ॥६०-५४९॥
—जिनसेनाचार्य-रचित, हरिवंश पुराण

च—णिव्वाणे वीरजिणे छव्वास सदेसु पंचवरिसेसु।
पणमासेसु गदेसु संजादो सगणिओ अहवा ॥
—तिलोयपण्णत्ति, भाग १, पृ० ३४१

से होता है ।[१] उस निष्कर्ष में भी महावीर-निर्वाण का काल ६०५-७८= ई० पू० ५२७ ही निश्चित होता है ।

डा० वासुदेव उपाध्याय, अपने ग्रन्थ गुप्त साम्राज्य का इतिहास[२] में गुप्त संवत्सर की छान-बीन करते हुए लिखते हैं : "अलबेरुनी से पूर्व शताब्दियों में कुछ जैन ग्रन्थकारों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि गुप्त तथा शक-काल में २४१ वर्ष का अन्तर है । प्रथम लेखक जिनसेन, जो ८वीं शताब्दी में वर्तमान थे, उन्होंने वर्णन किया है कि भगवान् महावीर के निर्वाण के ६०५ वर्ष ५ माह के पश्चात् शक राजा का जन्म हुआ तथा शक के अनन्तर गुप्त के २३१ वर्ष शासन के बाद कल्किराजा का जन्म हुआ ।[3] द्वितीय ग्रन्थकार गुणभद्र ने उत्तर पुराण में (८८६ ई०) लिखा है कि महावीर के निर्वाण के १००० वर्ष बाद कल्किराज का जन्म हुआ ।[४] जिनसेन तथा गुणभद्र के कथन का समर्थन तीसरे लेखक नेमिचन्द्र करते हैं ।

"नेमिचन्द्र त्रिलोकसार में लिखते हैं : 'शकराज महावीर-निर्वाण के ६०५ वर्ष ५ माह के बाद तथा शक-काल के ३९४ वर्ष ७ माह के पश्चात्

छ—पंच य मासा पंच य वासा छच्चेव होंति वाससया ।
सगकालेण य सहिया थावेयव्वो तदो रासी ॥
—धवला (जैन सिद्धान्त भवन, आरा), पत्र ५३७

१. *An Advanced History of India*, p. 120; गुप्त साम्राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ० १८२-१८३

२. भाग १, पृ० ३२८

३. .... गुप्तानां च शतद्वयम् ।
एकत्रिंशच्च वर्षाणि कालविद्भिरुदाहृतम् ॥
द्विचत्वारिंशदेवातः कल्किराजस्य राजता ।
ततोऽजितं जयो राजा स्यादिन्द्रपुरसंस्थितः ॥
वर्षाणि षट्शतीं त्यक्त्वा पञ्चाग्रां मासपञ्चकम् ।
मुक्तिं गते महावीरे शकराजा ततोऽभवत् ॥
—जिनसेन कृत हरिवंश पुराण, अ० ६०

४. *Indian Antiquary*, vol. XV., p. 143.

कल्किराज पैदा हुआ।' इनके योग से —६०५ वर्ष ५ माह+३६४ वर्ष ७ माह=१००० वर्ष होते हैं। इन तीनों जैन ग्रंथकारों के कथनानुसार शकराज तथा कल्किराज का जन्म निश्चित हो जाता है।"[1] इस प्रकार शक संवत् का निश्चय उक्त जैन धारणाओं पर करके विद्वान् लेखक ने महाराज हस्तिन् के खोह-लेख आदि के प्रमाण से गुप्त संवत् और शक संवत् का सम्बन्ध निकाला है। निष्कर्ष रूप में वे लिखते हैं: "इस समता से यह ज्ञात होता है कि गुप्त संवत् की तिथि में २४१ जोड़ने से शक-काल में परिवर्तन हो जाता है। इस विस्तृत विवेचन के कारण अलबेरुनी के कथन की सार्थकता ज्ञात हो जाती है। यह निश्चित हो गया कि शक-काल के २४१ वर्ष पश्चात् गुप्त संवत् का आरम्भ हुआ।"[2] फलितार्थ यह होता है कि इस सारी काल-गणना का मूल भगवान् महावीर का निर्वाण-काल बना है। वहाँ से उतरकर वह काल-गणना गुप्त संवत् तक आई है। यहाँ से मुड़कर यदि हम वापस चलते हैं, तो निम्नोक्त प्रकार से ई० पू० ५२७ के महावीर-निर्वाण-काल पर पहुंच जाते हैं:

गुप्त संवत् का प्रारम्भ—ई० ३१९

महावीर-निर्वाण—गुप्त संवत् पूर्व ८४६

अतः महावीर का निर्वाण-काल—ई० पू० ५२७

तेरापंथ के मनीषी आचार्यों ने जिस काल-गणना को माना है, उससे महावीर-निर्वाण का समय ई० पू० ५२७ आता है। भगवान् महावीर की जन्म-राशि पर उनके निर्वाण के समय भस्म-ग्रह लगा। उसका काल शास्त्रकारों ने २००० वर्ष का माना है।[3] श्रीमज्जयाचार्य के निर्णयानुसार २००० वर्ष का वह भस्म-ग्रह विक्रम संवत् १५३१ में उस राशि से उतरता है[4] तथा शास्त्रकारों[5] के अनुसार महावीर-निर्वाण के १९९० वर्ष पश्चात् ३३३ वर्ष

---

१. पणछस्सयवस्सं पणमासजुदं गमिय वीरणिवुइदो।
सगराजो सो कक्कीचदुणवतियमहिय सगमासं॥ —त्रिलोकसार, पृ० ३२

२. गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० १८१

३. कल्पसूत्र, सूत्र १२८-३०

४. भ्रमविध्वंसनम्, भूमिका

५. वंगचूलिया

की स्थिति वाले धूमकेतु ग्रह के लगने का विधान है। श्रीमुञ्जयाचार्य के अनुसार वह समय वि० सं० १८५३ होता है। उक्त दोनों अवधियाँ सहज ही निम्न प्रकार से महावीर-निर्वाण के ई०पू० ५२७ के काल पर इस प्रकार पहुँच जाती हैं :

भस्म-ग्रह की स्थिति—२००० वर्ष
भस्म-ग्रह उतरा—ई० सन् १४७३ (वि० सं० १५३०)
अतः महावीर-निर्वाण—ई० पू० ५२७
इसी प्रकार महावीर-निर्वाण के १९९० + ३३३ वर्ष बाद धूमकेतु उतरा;
अतः २३२३ वर्ष कुल स्थिति
उतरने का समय—ई० सन् १७९६ (वि० सं० १८५३)
अतः महावीर-निर्वाण—ई० पू० ५२७

जैन परम्परा में 'वीर-निर्वाण-संवत्' चल रहा है। विशेषता यह है कि वह निर्विवाद और सर्वमान्य है। वह संवत् भी ई० पू० ५२७ पर आधारित है। अभी ईस्वी सन् १९६३ में वीर-निर्वाण-संवत् २४९० चल रहा है, जो ईस्वी से ५२७ वर्ष अधिक है, जैसा कि होना ही चाहिए।

महावीर-निर्वाण ई० पू० ५२७ में निश्चित हो जाने से उनके प्रमुख जीवन-प्रसंगों का तिथि-क्रम इस प्रकार बनता है :

जन्म	ई० पू० ५९९
दीक्षा	ई० पू० ५६९
कैवल्य-लाभ	ई० पू० ५५७
निर्वाण	ई० पू० ५२७

काल-गणना

भारतवर्ष में मुख्यतया तीन प्राचीन काल-गणनाएं प्रचलित हैं : १. पौराणिक, २. जैन, ३. बौद्ध। पौराणिक काल-गणना का आधार विष्णु पुराण, मत्स्य पुराण, वायु पुराण, भागवत पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण आदि हैं। जैन काल-गणना का आधार तित्थोगाली पइन्नय, आचार्य मेरुतुंग द्वारा रचित विचार श्रेणी आदि हैं। बौद्ध काल-गणना का आधार सिलोनी ग्रन्थ दीपवंश, महावंश आदि हैं।

पुराणों का रचना-काल विद्वानों ने ई० पू० चौथी या तीसरी शताब्दी माना है।[१] पार्जिटर के अभिमतानुसार पुराणों का वर्तमान रूप अधिक-से-अधिक ईस्वी तीसरी शताब्दी में निर्मित हो ही चुका था।[२]

तित्थोगाली पइन्नय का रचना-काल लगभग तीसरी-चौथी शताब्दी माना जाता है।[३]

दीपवंश-महावंश का रचना-काल ईस्वी चौथी-पाँचवीं शताब्दी माना जाता है।[४]

पौराणिक और जैन काल-गणना नितान्त भारतीय हैं और उनकी परस्पर संगति है।[५] पौराणिक काल-गणना की वास्तविकता को इतिहासकारों ने स्वीकार किया है।[६] इस विषय में डा० स्मिथ ने लिखा है : "पुराणों में दी

---

१. पुराण किसी-न-किसी रूप में चौथी शताब्दी में अवश्य वर्तमान थे, क्योंकि कौटिल्य अर्थशास्त्र में पुराण का उल्लेख आया है।

—बौद्धकालीन भारत, ले० जनार्दन भट्ट, पृ० ३

अधिकांश विद्वानों की सम्मति है कि अर्थ-शास्त्र में चन्द्रगुप्त मौर्य की ही शासन-पद्धति का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है; अर्थशास्त्र ई०पू० तृतीय शतक की रचना है; अतः कहना पड़ेगा कि पुराणों की रचना ई० पू० तृतीय शतक से बहुत पहले ही हो चुकी थी।

—आर्य संस्कृति के मूलाधार, ले० डा० बलदेव उपाध्याय, पृ० १६४

२. *The Purāna Text of the Dynasties of the Kali Age*, Introduction, p. 12

३. वीर-निर्वाण-संवत् और जैन काल-गणना, पृ० ३०, टिप्पण सं० २७

४. *Early History of India*, by Dr. V. A. Smith, p. 11; बौद्धकालीन भारत, ले० जनार्दन भट्ट, पृ० ३

५. मुनि कल्याण विजयजी ने 'वीर-निर्वाण-संवत् और जैन काल-गणना', पृ० २५-२९ में इसका विवेचन किया है।

६. " 'पुराणों में प्राचीन इतिहास प्रामाणिक रूप से भरा हुआ है', ऐसी धारणा तो अंग्रेजी पढ़े-लिखे विद्वानों की भी होने लगी है। पुराणों में दिये गये इतिहास की पुष्टि शिलालेखों से, मुद्राओं से और विदेशियों के यात्रा-

गई राजवंशों की सूचियों की आधारभूतता को आधुनिक यूरोपीय लेखकों ने निष्कारण ही निन्दित किया है; इनके सूक्ष्म अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इनमें अत्यधिक मौलिक व मूल्यवान् ऐतिहासिक परम्परा उपलब्ध होती है।"[1] बौद्ध काल-गणना सिलोन से आई है, क्योंकि दीपवंश-महावंश की रचना सिलोनी भिक्षुओं द्वारा हुई है। इन ग्रन्थों के रचयिता के सम्बन्ध में राइस डेविड्स ने लिखा है: "ईस्वी चतुर्थ शताब्दी में किसी ने इन पालि-गाथाओं का संग्रह किया, जो सिलोन के इतिहास के सम्बन्ध में थीं। एक पूर्ण वृत्तान्त बनाने के लिए इनमें और गाथाएँ जोड़ी गईं। इस प्रकार से निर्मित अपने काव्य का नाम कर्ता ने दीपवंश दिया। जिसका अर्थ है—'द्वीप का समय-ग्रन्थ'। इसके एकाध पीढ़ी पश्चात् महानाम ने अपने महान् ग्रन्थ महावंश को लिखा। वह कोई इतिहासकार नहीं था और उसके पास अपने दो पूर्वजों द्वारा प्रयुक्त सामग्री के अतिरिक्त केवल प्रचलित दन्त-कथाओं का ही आधार था।"[2]

विवरण से पर्याप्त मात्रा में होने लगी है। अतः विद्वान् ऐतिहासिकों का कथन है कि यह पूरी सामग्री प्रामाणिक तथा उपादेय है।"

—आर्य संस्कृति के मूलाधार, पृ० १६७

१. Modern European writers have inclined to disparage unduly the authority of the Puranic lists, but closer study finds in them, much genuine and valuable historical tradition. —*Early History of India*, p. 12

२. In the fourth century of our era, some one collected such of these Pali verses, as refered to the history of Ceylon, piecing them together by other verses to make a consecutive narrative. He called his poem, thus constructed, the *Dīpavamsā*, the *Island Chronicle*.

A generation afterwards Mahānāma wrote his great work, the Mahāvamsa. He was no historian and had, besides the material used by his two predecessors, only popular legends to work on.

—*Buddhist India*, pp. 277-78

सुप्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् के ये विचार बौद्ध काल-गणना की अनधिकृतता को प्रकट करते हैं। वस्तुतः बौद्ध काल-गणना जैन तथा पौराणिक काल-गणना के साथ संगत नहीं होती।[१] उन दोनों की अपेक्षा यह वहुत दुर्बल रह जाती है।

दीपवंश-महावंश की असंगतियाँ

सिलोनी ग्रन्थ महावंश व दीपवंश में दी गई काल-गणना में कुछ भूलें तो वहुत ही आश्चर्यकारक हैं। समझ में नहीं आता, इतिहासकारों द्वारा इनकी अधिकृतता को मान्यता किस प्रकार मिल गई। उदाहरणार्थ—पौराणिक और जैन काल-गणनाओं में जहाँ नव नन्द राजाओं का काल क्रमशः १०० वर्ष[२] तथा १५० वर्ष[3] माना गया है, वहाँ महावंश की बौद्ध काल-गणना केवल २२ वर्ष मानती है[४] तथा दीपवंश में तो नन्दों का उल्लेख तक नहीं है।[५] सिलोनी काल-गणना की अन्य असंगति यह है कि पौराणिक काल-गणना में जहाँ शिशुनाग, काकवर्ण (कालाशोक)[६] आदि राजाओं के नाम अजातशत्रु के पूर्वजों में गिनाये

---

१. It is to be noted that the Buddhist tradition runs counter to the Brahminical and Jain traditions.
—*Chandragupta Maurya and His Times*, by Dr. Radha Kumud Mukherjee, p. 20

२. मत्स्य पुराण, अध्याय २७२, श्लोक २२; वायु पुराण, अध्याय ९९, श्लोक ३३०

३. तित्थोगाली पइन्नय, ६२१
विचार श्रेणी, पृ० ३, ४

४. महावश, परिच्छेद ५, गाथा १५

५. आधुनिक इतिहासकारों ने भी इसे भूल माना है। डा० स्मिथ ने नन्द-वंश का राज्य-काल ८८ वर्ष माना है। (*Early History of India*; p. 57) डा० राधाकुमुद मुखर्जी ने बौद्ध काल-गणना के २२ वर्षों को अयथार्थ सिद्ध किया है (हिन्दू सभ्यता, पृ० २६७)

६. महावंश के अनुसार कालाशोक के समय में दूसरी बौद्ध-संगीति हुई थी,

हैं; वहाँ दीपवंश-महावंश में ये ही नाम अजातशत्रु के वंशजों में गिनाये गए हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से यह एक अक्षम्य भूल है।[1] इनके अतिरिक्त महावंश की

किन्तु कालाशोक तथा उसके समय में हुई दूसरी संगीति के विषय में इतिहासकार पूर्ण रूप से संदिग्ध हैं। प्रो० नीलकण्ठ शास्त्री ने लिखा है : "The tradition says that the council was held in the time of Asoka or Kālāsoka, the son of Sisunaga, but history does not know of any such king." (*Age of Nandas and Mauryas*, p. 30)

१. इतिहासकारों द्वारा अयथार्थ बौद्ध काल-गणना को मान्यता मिलने का एक सम्भव कारण यह लगता है कि पुराणों में आये निम्न श्लोक की व्याख्या अशुद्ध रूप से की गई है।

> अष्टत्रिंशच्छतं भाव्याः प्राद्योताः पञ्च ते सुताः।
> हत्वा तेषां यशः कृत्स्नं शिशुनागो भविष्यति॥
>
> —वायु पुराण, अ० ९९, श्लोक ३१४

इस श्लोक के आधार पर यह माना जाता है कि शिशुनाग और काकवर्ण अन्तिम प्राद्योत राजा (नन्दीवर्धन) के पश्चात् हुए; अतः ये प्राग्-बुद्धकालीन न होकर पश्चात्-बुद्धकालीन थे, परन्तु पुराणों के पूर्वापर श्लोकों के अनुशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि उक्त मान्यता यथार्थ नहीं है। पुराणों में निम्न क्रम से कलियुग के राजवंशों का ब्योरा प्राप्त होता है :

१. पौरववंश—अभिमन्यु (जो महाभारत में लड़े थे) से क्षेमक तक; क्षेमक बुद्ध के समकालीन उदायन के बाद चतुर्थ राजा था। इस वंश की राजधानी पहले हस्तिनापुर थी और बाद में कौशाम्बी। अधिसीमकृष्ण के वंशज राजा नृचक्षु के समय में राजधानी का परिवर्तन हुआ।

२. ऐक्ष्वाकु वंश—बृहद्बल (महाभारत के योद्धा) से सुमित्र तक; सुमित्र बुद्ध के समकालीन राजा प्रसेनजित् के बाद राजा चतुर्थ था। इस

वंश की राजधानी कोशल में श्रावस्ती थी।

३. पौरव चन्द्र वंश (राजा वृहद्रथ के वंशज) सहदेव (महाभारत के योद्धा) से रिपुंजय तक; रिपुंजय बुद्ध के समकालीन चण्ड-प्रद्योत का पूर्ववर्ती राजा था।

वृहद्रथ के वंशजों (वार्हद्रथों) को सम्भवतया इसलिए 'मागध' कहा जाता है कि वृहद्रथ, जरासन्ध आदि मगध के राजा थे तथा सहदेव के पुत्र सोमाधि ने महाभारत-युद्ध के पश्चात् मगध में गिरिव्रज में राजधानी की स्थापना की थी। सहदेव से रिपुंजय तक २२ राजाओं की कालगणना देने के पश्चात् पुराणों में बताया गया है :

पूर्णं वर्षसहस्रं वै तेषां राज्यं भविष्यति ॥
वृहद्रथेष्वतीतेषु वीतिहोत्रेष्ववन्तिषु ।
पुलिक: स्वामिनं हत्वा स्वपुत्रमभिषेक्ष्यति ॥

(वायु पुराण, अ० ९९, श्लोक ३०९-३१०; मत्स्य पुराण, अ० २७१, श्लोक ३०; अ० २७२, श्लोक १)

ये श्लोक बताते हैं कि अवन्ती में वीतिहोत्र और वृहद्रथों का राज्य व्यतीत हो जाने पर अन्तिम राजा रिपुंजय को मार कर उसके मन्त्री पुलिक ने अपने पुत्र प्रद्योत को अभिषिक्त किया। यह सुविदित है कि प्रद्योत का राज्य अवन्ती में था और वह महावीर-बुद्ध का समकालीन था। इससे स्पष्ट होता है कि वार्हद्रथ राजाओं ने सोमाधि के समय में मगध में राज्य स्थापित किया था, किन्तु बाद में वे अवन्ती चले गये थे। वहाँ अन्तिम राजा रिपुंजय की हत्या के पश्चात् प्राद्योतों का राज्य प्रारम्भ हुआ।

४. प्राद्योत वंश—प्राद्योत से अवन्ती-वर्धन (नन्दीवर्धन या वर्तीवर्धन) तक; इस वंश का राज्य अवन्ती में था।

५. शिशुनाग वंश—शिशुनाग से महानन्दी तक; इस वंश का राज्य मगध में था। पुराणों के अनुसार राजा शिशुनाग ने शिशुनाग वंश की स्थापना की थी। शिशुनाग ने काशी का राज्य जीत लिया और अपने पुत्र काकवर्ण को काशी का राजा बनाकर स्वयं मगध का राज

करने लगा। उसने गिरिव्रज में अपनी राजधानी रखी।

> हत्वा तेषां यशः कृत्स्नं शिशुनागो भविष्यति।
> वाराणस्यां सुतं स्थाप्य श्रयिष्यति गिरिव्रजम् ॥

—(वायु पुराण, अ० ९९, श्लोक ३१४-५; मत्स्य पुराण, अ० २७२, श्लोक ६)

डा० त्रिभुवनदास लहरचन्द शाह के अनुसार २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के पिता अश्वसेन के बाद शिशुनाग ने काशी में राज्य स्थापित किया था (प्राचीन भारतवर्ष, खण्ड १)। डा० शाह ने पौराणिक, जैन और बौद्ध काल-गणनाओं के संयुक्त अध्ययन के आधार पर एक सुसंगत काल-क्रम का निर्माण किया है (जिसकी विस्तृत चर्चा 'काल-गणना पर पुनर्विचार' में की जाएगी)। इस काल-क्रम के अनुसार शिशुनाग के पश्चात् क्रमशः काकवर्ण, क्षेमवर्धन, क्षेमजित्, प्रसेनजित्, बिम्बिसार और अजातशत्रु राजा हुए।

अब यदि उक्त पाँच वंशों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाये तो यह स्पष्ट होता है कि ये वंश क्रमशः उत्तरवर्ती नहीं हैं, अपितु प्रायः समसामयिक हैं। प्रथम वंश का उदायन, द्वितीय वंश का प्रसेनजित्, चतुर्थ वंश का प्रद्योत व पंचम वंश का अजातशत्रु (और बिम्बिसार) वत्स, कोशल, अवन्ती और मगध के समसामयिक राजा थे, यह असंदिग्धतया कहा जा सकता है (Cf. Rapson, *Cambridge History of India*, p. 277)। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस प्रकार द्वितीय वंश प्रथम वंश का उत्तरवर्ती नहीं है, उसी प्रकार पंचम वंश चतुर्थ वंश का उत्तरवर्ती नहीं है। तात्पर्य यह हुआ कि "हत्वा तेषां यशः कृत्स्नं शिशुनागो भविष्यति।" में "तेषां" अवन्ती के प्राद्योतों का वाचक नहीं है। यह भी निश्चित है कि चतुर्थ वंश तृतीय वंश का समसामयिक नहीं, अपितु उत्तरवर्ती है जैसा कि स्पष्टतया बताया गया है। प्रश्न केवल यह रहता है कि बार्हद्रथों का राज्य मगध में था, जबकि प्राद्योतों का अवन्ती में स्थापित हुआ; यह कैसे सम्भव हो सकता है? इसका उत्तर भी सम्भवतः यही है कि यद्यपि बार्हद्रथों का राज्य प्रारम्भ

में मगध में स्थापित हुआ था; फिर भी जब शिशुनाग ने मगध में शैशुनागों का राज्य स्थापित किया, तब बार्हद्रथों ने मगध से हटकर अवन्ती में अपना राज्य स्थापित किया। इस प्रकार उत्तरवर्ती बार्हद्रथ राजा और पूर्ववर्ती शैशुनाग क्रमशः अवन्ती और मगध के समसामयिक राजा थे तथा 'हत्वा तेषां यशः कृत्स्नं' में 'तेषां' का तात्पर्य 'बार्हद्रथों' से है।

पौराणिक श्लोकों की यह व्याख्या पौराणिक काल-गणना के साथ भी पूर्णतः संगत हो जाती है। पुराणों के अनुसार बृहद्रथ-वंश के २२ राजाओं ने १००० वर्ष तक राज्य किया, जिनके नाम और राज्यत्व-काल इस प्रकार हैं —

१. सोमाधि ५८ वर्ष
२. श्रुतश्रव ३७ वर्ष
३. अयुतायुस् ३६ वर्ष
४. निरमित्र ४० वर्ष
५. सुक्षत्र ५६ वर्ष
६. बृहत्कर्मा २३ वर्ष
७. सेनजित् ५० वर्ष
८. श्रुतञ्जय ४० वर्ष
९. विभु (प्रभु) २८ वर्ष
१०. शुची ५८ वर्ष
११. क्षेम २८ वर्ष
१२. भूव्रत ६४ वर्ष
१३. सुनेत्र (धर्मनेत्र) २५ वर्ष
१४. निर्वृत्ति ५८ वर्ष
१५. सुव्रत (त्रिनेत्र) ३८ वर्ष
१६. दृढ़सेन ४८ वर्ष
१७. महीनेत्र ३३ वर्ष
१८. सुचल ३२ वर्ष
१९. सुनेत्र ४० वर्ष

२०. सत्यजित्	८३ वर्ष
२१. विश्वजित्	३५ वर्ष
२२. रिपुञ्जय	५० वर्ष
समग्र	१००० वर्ष

(द्रष्टव्य, वायु पुराण, अ० ६६, श्लोक २६४-३०६; मत्स्य पुराण, अ० २७१, श्लोक १७-३०; F. E. Pagiter' *The Purana Text of the Dynasties of the Kali Age*, pp. 13-17, 67-78)

इस प्रकार २२ राजाओं का राज्य-काल १००० वर्ष होता है। गाणितिक अनुपात की गणना में प्रत्येक राजा का राज्य-काल ४५.४५ वर्ष होता है। इस गणना से अन्तिम ६ राजाओं का काल ४५·४५×६ =२७३ वर्ष होता है। अन्तिम ६ राजाओं के वास्तविक राज्यत्व-कालों का योग भी २७३ वर्ष होता है।

दूसरे प्रमाणों के आधार पर यह पाया जाता है कि प्रद्योत का राज्याभिषेक ई० पू० ५४६ में हुआ था; (द्रष्टव्य, 'निष्कर्ष की पुष्टि' प्रकरण)। इसका तात्पर्य यह हुआ कि अवन्ती में बार्हद्रथ राजा रिपुंजय का राज्यान्त ई० पू० ५४६ में हुआ। हमारी गणना के अनुसार ई० पू० ५४४ में अजातशत्रु का राज्य प्रारम्भ होता है। डा० टी० एल० शाह ने पुराणों के आधार पर शिशुनाग वंश के राजाओं का राज्य-काल इस प्रकार माना है —

१. शिशुनाग	६० वर्ष
२. काकवर्ण	३६ वर्ष
३. क्षेमवर्धन	५० वर्ष
४. क्षेमजित्	३६ वर्ष
५. प्रसेनजित्	४३ वर्ष
६. बिम्बिसार	३८ वर्ष

अब यदि इस काल-क्रम के साथ बार्हद्रथ राजाओं के अन्तिम ६ राजाओं के काल-क्रम की तुलना की जाती है, तो इन दोनों वंशों की

कुछ एक मान्यताएँ न केवल मूल त्रिपिटकों के साथ असंगत होती हैं, अपितु मूलभूत ऐतिहासिक तथ्यों के साथ भी संगति नहीं पातीं। 'अजातशत्रु के राज्य-काल के आठवें वर्ष में बुद्ध का निर्वाण हुआ'[१] "अशोक का राज्याभिषेक बुद्ध-निर्वाण के २१८ वर्ष पश्चात् हुआ'[२] आदि मान्यताएँ इनमें प्रमुख हैं।

समसामयिकता पूर्णतः सिद्ध हो जाती है —

बार्हद्रथ राजा	समय (ई०पू०)	शैशुनाग राजा	समय (ई०पू०)
१. महीनेत्र	८२३-७८६	शिशुनाग	८०७-७४७
२. सुचल	७८६-७५७	काकवर्ण	७४७-७११
३. सुनेत्र	७५७-७१७	क्षेमवर्धन	७११-६६१
४. सत्यजित्	७१७-६३४	क्षेमजित्	६६१-६२५
५. विश्वजित्	६३४-५९९	प्रसेनजित्	६२५-५८२
६. रिपुंजय	५९९-५४९	बिम्बिसार	५८२-५४४

मगध में बिम्बिसार के पश्चात् सातवाँ राजा अजातशत्रु हुआ और अवन्ती में रिपुंजय के पश्चात् प्रद्योत हुआ, जिनकी समसामयिकता निर्विवादतया सिद्ध हो चुकी है। इनसे आगे के राजवंशों की चर्चा 'काल-गणना पर पुनर्विचार' में की गई है। इस प्रकार पुराणों के आधार पर प्राग्-बुद्ध राजाओं की काल-गणना पूर्णतया संगत हो जाती है तथा सिलोनी ग्रन्थों की काल-गणना की असंगतता प्रमाणित हो जाती है।

१. द्रष्टव्य, सम्पादकीय, पृ० ६-७

२. हुल्ट्स ने इस विषय पर सन्देह प्रकट किया है। देखें, *Inscriptions of Asoka*, p. 33; इस विषय में टी० डब्ल्यू० राइस डेविड्स का निम्न मन्तव्य भी द्रष्टव्य है —

"According to the Rāja-paramparā, or line of kings, in the Ceylon chronicles, the date of great decease would be 543 B.C., which is arrived at by adding to the date 16 B.C. (from which the reliable portion of the history

विशेष ध्यान देने की बात तो यह है कि अनेक इतिहासकारों ने इन

---

begins), two periods of 146 and 236 years. The first purports to give the time which elapsed between 161 B. C. and the great Buddhist church council held under Asoka, and in the eighteenth year of his reign at Patna; and the second to give the interval between that council and the Buddha's death.

"It would result from the first calculation that the date of Asoka's coronation would be 325 B.C. (146+161+18). But we know that this must contain a blunder or blunders, as the date of Asoka's coronation can be fixed, as above stated with absolute certainty, within year or two either way of 267 B.C.

"Would it then be sound criticism to accept the other, earlier, period of 236 years found in those chronicles —a period which we cannot test by Greek chronology—and by simply adding the Ceylon calculation of 236 years to the European date for the eighteenth year of Asoka (i.e. circa 249 B. C.) to conclude that the Buddha died in or about 485 B. C. ?

"I cannot think so. The further we go back, the greater does the probability of error become, not less. The most superficial examination of the details of this earlier period showes to that they are unreliable, and what relience would it be wise to place upon the total, apart from the details, when we find it mentioned for the first time in a work *Dipavamsa*, written eight centuries after the date it is proposed to fix ?

"If further proof were needed, we have it in the fact that the *Dipavamsa* actually contains the details of another calculation not based on the lists of kings (Rāja—Paramparā), but on a list of Theras (Therā—paramparā)

सिलोनी ग्रन्थों की प्रामाणिकता के विषय में बहुत समय पहले संदिग्धता व्यक्त कर दी थी। डा० वी० ए० स्मिथ ईस्वी सन् १६०७ में ही लिख चुके थे: "इन सिंहली कथाओं की, जिनका मूल्य आवश्यकता से अधिक आँका जाता है, सावधानीपूर्वक समीक्षा की आवश्यकता है .....।"[१] डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने डा० स्मिथ की इस चेतावनी को मान्यता दी है और माना है कि महावंश की कथाओं को ऐतिहासिक धारणाओं का आधार नहीं बनाया जा सकता।[२] डा०शान्तिलाल शाह ने सिलोनी काल-गणना में जो असंगतता है, उसे "जान-बूझकर किया गया गोलमाल" माना है।[3] डा० शाह लिखते हैं: "बौद्ध परम्परा (सिलोनी परम्परा) की यह विचित्रता है कि उसमें मुख्यतया बौद्ध धर्म के हीनयान सम्प्रदाय का इतिहास दिया गया है और बाद में सिलोन में हुए इसके विकास का इतिहास दिया गया है; क्योंकि यद्यपि बौद्ध धर्म का उद्गम भारत में हुआ था, फिर भी उसका विकास सिलोन में हुआ। इस भौगोलिक मर्यादा के, जो कि सिलोन के इतिहास के संरक्षण में एक प्रमुख निमित्त है, फलस्वरूप इस परम्परा में भारत की अपेक्षा सिलोन के बारे में अधिक पूर्ण ब्यौरा मिलता है। जो व्यक्ति **दीपवंश** व **महावंश** की योजना व विषय से परिचित है, वह इस बात से कदाचित् ही अनभिज्ञ रहेगा कि इन दोनों ग्रन्थों में मिलने वाला उत्तर भारतीय राजाओं का ब्यौरा केवल प्रासंगिक है और अल्प महत्त्व रखता है। यह निष्कर्ष **दीपवंश** और **महावंश** की विचित्र

---

stretching back from Asoka's time to the time of great Teacher—which contradicts this calculation of 236 years."

—*S.B.E.*, vol. XI, Introduction to *Maha-Parinirvana Sutta*, p. XLVI

१. These Sinhalese stories, the value of which has been sometimes overestimated, demand cautious criticism......

—*Early History of India*, p. 9

२. *Political History of Ancient India*, p. 6

३. *Chronological Problems*, p. 41

रचना[1] से पूर्णतया पुष्ट हो जाता है।"[2]

इस प्रकार की अनेक असंगतियों के होते हुए भी बुद्ध-निर्वाण-काल का निश्चय करने के लिए किये गए अब तक के प्रयत्नों में सिलोनी काल-गणना

---

१. महावंश का विषयानुक्रम इस प्रकार है :

१. तथागत का लंका-आगमन
२. महासम्मत की जाति
३. प्रथम संगीति
४. द्वितीय संगीति
५. तृतीय संगीति
६. विजय का आगमन
७. विजय का राज्याभिषेक
८. पांडु वासुदेव का राज्याभिषेक
९. अभय का राज्याभिषेक

-- (द्रष्टव्य, महावंश, अनु० गाइगर, पृ० ८)

२. "The peculiarity of the Buddhist tradition (the Ceylonese tradition) is that it confines itself firstly to the history of the Hinayana Buddhism and secondly to the history of its development in Ceylon, since Buddhism although originating in India, had found its development in Ceylon. Because of this territorial limitation, which has been a great factor for the preservation of the history of Ceylon, the account of this tradition about Ceylon is much more perfect than that about India. One who is acquainted with the scheme and content of the Dīpavamsha and Mahāvamsha will hardly fail to notice that the account of the North Indian kings in these two books is only occasional and of minor importance. This conclusion is absolutely borne out by the typical construction of the Dīpavamsha and Mahāvamsha.

—*Chronological Problems*, p. 19

को प्रधानता दी गई है। यही कारण है कि बुद्ध के तिथि-क्रम और वास्तविक जीवन-प्रसंगों के बीच असंगति पाई जाती है।

काल-गणना पर पुनर्विचार

जैन काल-गणना तथा सर्वमान्य ऐतिहासिक तिथियों और तथ्यों के आधार पर शिशुनाग-वंश के संस्थापक शिशुनाग से लेकर अवन्ती में चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यारोहण तक का तिथि-क्रम अब हम निश्चित कर सकते हैं।[1] निम्न तिथियों का निश्चय हम कर चुके हैं :

अजातशत्रु का राज्यारोहण	ई० पू० ५४४
गोशालक की मृत्यु	ई० पू० ५४३
महावीर-निर्वाण	ई० पू० ५२७
चन्द्रगुप्त मौर्य का मगध-राज्यारोहण	ई० पू० ३२२
चन्द्रगुप्त मौर्य का अवन्ती-राज्यारोहण	ई० पू० ३१२

जैन काल-गणना के अनुसार अवन्ती में महावीर-निर्वाण के पश्चात् ६० वर्ष पालक-वंश और १५५ वर्ष नन्द-वंश का राज्य रहा। तदनुसार अवन्ती की राज्यत्व-काल-गणना इस प्रकार बनती है :

पालक-वंश	ई० पू० ५२७-४६७
नन्द-वंश	ई० पू० ४६७-३१२
चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्यारोहण	ई० पू० ३१२

मगध की राज्यत्व-काल-गणना के सम्बन्ध में हमें यह जानकारी मिलती है कि महावीर-निर्वाण के पश्चात् मगध में शिशुनाग-वंश का राज्य

---

१. मुनि कल्याण विजयजी तथा डा० टी० एल० शाह ने जैन, बौद्ध और पौराणिक काल-गणना के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर शिशुनाग-वंश और नन्द-वंश के राजाओं के राज्यत्व-काल की गणना की है। विस्तार के लिए देखें, वीर-निर्वाण संवत् और जैन काल-गणना, पृ० २५-६ ; प्राचीन भारतवर्ष, खण्ड १।

५३ या ५४ वर्ष तक रहा[1] और उसके बाद नन्द-वंश का राज्य स्थापित हुआ। इस प्रकार मगध में शिशुनाग-वंश का अन्त और नन्द-वंश का प्रारम्भ ई० पू० ४७४-३ में होता है। पुराणों[2] के अनुसार शिशुनाग-वंश के १०

---

१. डा० टी० एल० शाह (पूर्व उद्धृत ग्रंथ) के अनुसार महावीर-निर्वाण के पश्चात् मगध में शिशुनाग-वंश के राजाओं का राज्यत्व-काल इस प्रकार रहा —

अजातशत्रु [कोणिक]	३० वर्ष
उदायी	१६ वर्ष
अनुरुद्ध-मुण्ड	८ वर्ष
कुल योग	५४ वर्ष

महावीर-निर्वाण-काल ई० पू ५२७ है; अतः मगध में शिशुनाग-वंश का अन्त ई० पू० ४७३ में होता है।

मुनि कल्याण विजयजी (पूर्व उद्धृत ग्रंथ, पृ० २८) ने पुराणों के आधार पर अजातशत्रु व उदायी का राज्यत्व-काल क्रमशः ३७ और ३३ माना है। जैसा कि हम सिद्ध कर चुके हैं, महावीर का निर्वाण अजातशत्रु के राज्यारोहण के १७ वर्ष पश्चात् हुआ; अतः इस गणना से भी मगध में शिशुनाग-वंश का अन्त महावीर-निर्वाण के ५३ वर्ष पश्चात् अर्थात् ई० पू० ४७४ में होता है।

२. नन्द-वंश का राज्य मगध में ई० पू० ४७४-३ में तथा अवन्ती में ई० पू० ४६७ में आरम्भ हुआ, इसकी पुष्टि ऐतिहासिक आधार पर भी होती है। यह एक सर्वमान्य ऐतिहासिक तथ्य है कि उस समय में मगध और अवन्ती के बीच काफी संघर्ष चल रहा था। इससे यह सम्भव लगता है कि प्रथम नन्द राजा ने मगध में अपना राज्य स्थापित करने के ६ या ७ वर्ष बाद अवन्ती का राज्य जीत लिया हो। यह तो सभी इतिहासकारों द्वारा निर्विवादतया माना जाता है कि नन्दों ने भारत में एकछत्र राज्य (एकराट्) स्थापित किया था। द्रष्टव्य, *Political History of Ancient India*, by Dr. H. C. Raychaudhuri, p. 234; *Age of Nandas and Mauryas*, by Nilakantha Shastri, pp. 11-20

राजाओं ने मगध में ३३३ वर्ष[1] तक राज्य किया। तदनुसार शिशुनाग-वंश का राज्यारम्भ-काल ई० पू० ८०७ में आता है।[2] इस प्रकार मगध में शिशुनाग-वंश के १० राजाओं का राज्य-काल ई० पू० ८०७-४७४ है।[3] इनमें से प्रथम पाँच राजाओं का समय ई० पू० ८०७-५८२ है।[4] ई० पू० ५८२ में बिम्बिसार

---

१. यहाँ यह ध्यान देना आवश्यक है कि यद्यपि पुराणों में शिशुनाग-वंश का समग्र राज्य-काल ३६२ वर्ष बताया गया है, फिर भी भिन्न-भिन्न राजाओं का जो राज्य-काल वहाँ दिया गया है, उसका योगफल ३३३ वर्ष होता है। द्रष्टव्य, वायु पुराण, अ० ९९, श्लो० ३१५-२१; भारत के प्राचीन राजवंश, ले० महामहोपाध्याय विश्वेश्वरनाथ रेउ, खण्ड २, पृ० ५४

२. जैसा कि हम देख चुके हैं, शिशुनाग को भगवान् पार्श्वनाथ का समकालीन माना जाता है। पार्श्वनाथ का निर्वाण महावीर-निर्वाण से २५० वर्ष पूर्व हुआ था और उनकी समग्र आयु १०० वर्ष थी; अतः पार्श्वनाथ का समय ई० पू० ८७७—ई० पू० ७७७ है (द्रष्टव्य, *Political History of Ancient India*, p. 97)। शिशुनाग का काल हमारी गणना के अनुसार ई० पू० ८०७-७४७ आता है। इस प्रकार शिशुनाग और भगवान् पार्श्वनाथ की समकालीनता पुष्ट हो जाती है।

३. हम देख चुके हैं कि डा० टी० एल० शाह के अनुसार शिशुनाग के बाद क्रमशः काकवर्ण, क्षेमवर्धन, क्षेमजित् और प्रसेनजित् राजा हुए। प्रसेनजित् का उल्लेख पुराणों में नहीं मिलता, किन्तु जैन परम्परा में प्रसेनजित् को बिम्बिसार का पिता माना गया है। यह भी बताया जाता है कि प्रसेनजित् ने मगध की राजधानी कुशाग्र नगर से हटाकर गिरिव्रज में बनाई (प्राचीन भारतवर्ष, खण्ड १)। प्रसेनजित् का उल्लेख बौद्ध ग्रन्थ दिव्यावदान (पृ० ३६९) में शिशुनाग व काकवर्ण के वंशजों में आया है। देखें, *Political History of Ancient India*. p. 222

४. डा० टी० एल० शाह ने पहले पाँच राजाओं का काल २२५ वर्ष तथा अन्तिम पाँच राजाओं का काल १०८ वर्ष माना है; अतः बिम्बिसार का राज्यारम्भ ई० पू० ५८२ तथा शिशुनाग-वंश का अन्त ई० पू० ४७४ में आता है।

का राज्य प्रारम्भ होता है।[1] बिम्बिसार के पश्चात् अजातशत्रु का राज्यारम्भ-काल निश्चित रूप से ई० पू० ५४४ है तथा यह भी निश्चित किया जा चुका है कि महावीर-निर्वाण के १७ वर्ष पूर्व अजातशत्रु के राज्य का प्रारम्भ हुआ तथा ३० वर्ष पश्चात् उसका अन्त हुआ। इस प्रकार अजातशत्रु का राज्य-काल ई० पू० ५४४-४९७ होता है। अजातशत्रु के पश्चात् उसका पुत्र उदायी मगध का राजा हुआ।[2] उदायी ने १६ वर्ष राज्य किया; अतः उदायी का राज्य-

---

१. डा० वी० ए० स्मिथ ने भी बिम्बिसार का राज्यारोहण-काल ई० पू० ५८२ माना है; देखें *Oxford History of India*. p. 45

२. जैन काल-गणना अजातशत्रु के बाद उदायी को राजा मानती है। पुराणों के अनुसार अजातशत्रु के बाद क्रमशः दर्शक, उदायी, नन्दीवर्धन और महानन्दी राजा हुए। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार उदायीभद्र, अनिरुद्ध व मुण्ड राजा हुए। वस्तुतः नन्दीवर्धन और महानन्दी नन्द-वंश के राजा थे (देखें, आगे की टिप्पण)। दर्शक का उल्लेख पुराणों के अतिरिक्त स्वप्नवासवदत्तम् जैसे प्रसिद्ध संस्कृत नाटक में राजगृह के राजा के रूप में हुआ है। मुनि कल्याण विजयजी ने (पूर्व उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २२-३) प्रमाणित किया है कि दर्शक मगध की मुख्य गद्दी चम्पा या पाटलीपुत्र का राजा न होकर राजगृह-शाखा का राजा था। बिम्बिसार के पश्चात् अजातशत्रु ने मगध की मुख्य राजधानी चम्पा में बनाई; ऐसा स्पष्ट उल्लेख जैन आगमों में मिलता है तथा जैन एवं बौद्ध काल-गणना अजातशत्रु के बाद उदायी का ही उल्लेख करती है। इससे यही अनुमान लगता है कि दर्शक मगध की मुख्य गद्दी का अधिकारी नहीं था। कुछ विद्वानों का अभिमत है कि दर्शक बिम्बिसार के अनेक पुत्रों और प्रपुत्रों में से कोई एक हो सकता है। जैसे डा० सीतानाथ प्रधान ने माना है—"दर्शक बिम्बिसार के अनेक पुत्रों में से एक हो सकता है, जो बिम्बिसार के जीवन में ही राज-कार्य की देखभाल करने लगा हो (*Chronology of Ancient India*, p. 212), तथा द्रष्टव्य, *Political History of Ancient India*, by H. C. Raychaudhuri, p. 130; *Mahāvamsa* tr. by Geiger, Introduction.) । डा० सीतानाथ प्रधान ने यह भी लिखा है—"विष्णुपुराण का यह वंशानुक्रम, जिसमें अजातशत्रु और

काल ई० पू० ४९७-४८१ होता है। तत्पश्चात् अनिरुद्ध-मुण्ड के ८ वर्ष के राज्य-काल के वाद ई० पू० ४७३ में मगध में शिशुनाग-वंश का अन्त हुआ। शिशुनाग-वंश के वाद नन्द-वंश का राज्य प्रारम्भ हुआ। नन्द-वंश का प्रथम राजा नन्दीवर्धन था।[1] मगध में ई० पू० ४७३ में राज्य स्थापित करने के पश्चात् नन्दीवर्धन ने ई० पू ४६७ में अवन्ती पर विजय प्राप्त की। वहाँ पालक-

---

उदयाश्व के बीच दर्शक का उल्लेख है, अस्वीकार्य है।" (*Chronology of Ancient India*, p. 217); अतः मगध में शिशुनाग-वंश की राज्य-काल-गणना में दर्शक को गिनना आवश्यक नहीं है।

१. बौद्ध काल-गणना के अनुसार अनिरुद्ध-मुण्ड के पश्चात् नागदशक और शुशुनाग ने क्रमशः २४ व १८ वर्ष राज्य किया (महावंश, परिच्छेद ४, गाथा ४-६)। पुराणों में दर्शक और नन्दीवर्धन का काल क्रमशः २४ और ४२ (अथवा ४०) वर्ष बताया गया है (वायु पुराण, अ० ९९, श्लो० ३२०, मत्स्य पुराण, अ० २७१, श्लोक १०)। लगता है, पुराणों का दर्शक और बौद्धों का नागदशक एक ही व्यक्ति है, जैसा कि कुछ इतिहासकारों ने माना है (डा० राधाकुमुद मुखर्जी, हिन्दू सभ्यता पृ० २६५, E.J. Rapson, *Cambridge History of India*, p. 279)। यह भी सम्भव है कि दर्शक या नागदशक ने राजगृह की शाखा-गद्दी पर २४ वर्ष राज्य किया और उसी के समकाल में मगध की मुख्य गद्दी (पाटलिपुत्र) में उदाई (१६ वर्ष) व अनिरुद्ध-मुण्ड (८ वर्ष) ने राज्य किया। मुण्ड के पश्चात् दर्शक या नागदशक ने मगध की मुख्य गद्दी पर कब्जा कर लिया और नन्दीवर्धन नाम धारण कर नन्द-वंश की स्थापना की तथा १८ वर्ष राज्य किया (डा० टी० एल० शाह, प्राचीन भारतवर्ष)। पुराणों में जो नन्दीवर्धन का राज्य-काल ४२ वर्ष बताया गया है, वह राजगृह के २४ वर्ष और पाटलिपुत्र के १८ वर्ष को मिलाकर हो सकता है। बौद्ध-गणना में अनिरुद्ध-मुण्ड के पश्चात् जो शुशुनाग का उल्लेख है, वह भी नन्दीवर्धन के लिए ही हो सकता है, क्योंकि शिशुनाग-वंश का होने से उसे शैशुनाग या शुशुनाग भी कहा जा सकता है।

वंश या प्राद्योतों[1] का अन्त किया तथा नन्द-वंश का राज्य स्थापित किया।

---

१. पुराणों के अनुसार पुलक (अथवा मुनक) नामक मंत्री ने अपने राजा रिपुञ्जय का वध कर अपने पुत्र प्रद्योत को अवन्ती की गद्दी पर बैठाया। (वायु पुराण, अ० ९९, श्लो० ३०९-३१४, मत्स्य पुराण, अ०२७१, श्लो० १-४)। हम देख चुके हैं कि बार्हद्रथों के पश्चात् अवन्ती में प्राद्योतों का राज्य प्रारम्भ हुआ। प्राद्योतों के पाँच राजा इस प्रकार हुए :

१. प्रद्योत (महासेन अथवा चण्ड-प्रद्योत)
२. पालक
३. विशाखयूप
४. अजक (या गोपालक)
५. अवन्तीवर्धन (अथवा वर्तीवर्धन)

जैन काल-गणना के अनुसार पालक का राज्याभिषेक उसी दिन हुआ, जिस दिन महावीर का निर्वाण हुआ तथा उसके वंश का राज्य-काल ६० वर्ष तक रहा। पौराणिक काल-गणना में पालक का राज्य-काल २० वर्ष माना है। (द्रष्टव्य, *The Purana Text of the Dynastics of the Kali Age*, p. 19, footnote 26)। यद्यपि पुराणों की कुछ प्रतियों में २४ वर्ष का उल्लेख है, फिर भी विद्वानों ने २० वर्ष को ही सही माना है (द्रष्टव्य, *Chronological Problems, by Dr. Shanti Lal Shah* p. 26.)। तीसरे प्राद्योत राजा विशाखयूप का राज्य-काल पुराणों में ५३ (अथवा ८५) वर्ष बताया गया है, किन्तु मृच्छकटिक जैसी साहित्यिक कृतियों के आधार पर विद्वानों ने प्रमाणित किया है कि पालक का उत्तराधिकारी अजक या गोपालक था; अतः विशाखयूप को पालक-वंश में नहीं गिनना चाहिए। (जैसा कि डा० शान्तिलाल शाह ने लिखा है : "What about Visākhayupa who occurs in the *Purāna* in between Pālaka and Aryaka? According to the family history of pradyata, which we have seen just now, there is no place for Visākhayupa in between Pālaka and Ajaka as reported."—*Chronological Problems*, p. 27. मजूमदार शास्त्री

यह प्रतीत होता है कि अवन्ती-विजय के पश्चात् नन्दीवर्धन ने कलिंग पर आक्रमण किया और वहाँ से एक जैन मूर्ति को उठाकर मगध में ले आया। हाथीगुम्फा शिलालेख के आधार पर इस घटना का समय ई० पू० ४६६ प्रमाणित होता है।[1]

ने लिखा है: "Visākhayupa has been introduced between Pālaka and Ajaka, but as that name does not occur in all mss, we ought to take no notice of him."—*Journal of Bihār and Orissa Research socity*, Vol. VII, p. 116.) डा० रमाशंकर त्रिपाठी ने लिखा है : "पुराणों में पालक और अजक के बीच विशाखयूप नाम रखा गया है, यह सम्भवतया भूल है।" (प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ७२)। इस प्रकार २० वर्ष के पालक के राज्य-काल के बाद अजक राजा हुआ। पुराणों में अजक का राज्य-काल २१ वर्ष बताया गया है। तत्पश्चात् अवन्तीवर्धन या वर्तीवर्धन ने २० वर्ष राज्य किया। इस प्रकार पालक, अजक और अवन्तीवर्धन ने ६१ वर्ष राज्य किया और उसके बाद प्रद्योतों का अन्त हुआ। इस प्रकार जैन एवं पौराणिक—दोनों ही काल-गणनाएँ पालक-वंश का राज्य ६० या ६१ वर्ष मानती हैं। (तुलना कीजिए, *Chronological Problems*, pp. 25-27)

१. कलिंग के राजा खारवेल के हाथीगुम्फा शिलालेख में दो बार नन्दराजा का उल्लेख हुआ है। (द्रष्टव्य, E. J. Rapson, *Cambridge History of India*, Vol. 1. p. 280)। इस शिलालेख की छट्ठी पंक्ति में लिखा गया है : "पंचमे चेदानि वसे नन्द राजा ति-वस-सत ओगाहितं तंसुलिय-वात पनदि (म्) नगरं पवेस (यति) ......"—"और (अपने राज्य काल के) पाँचवें वर्ष में वह (खारवेल) ३०० वर्ष पूर्व नन्द राजा द्वारा खोदी गई नहर तोसली या तंसुलिय को राजधानी में लाता है (अथवा नहर के द्वारा नगर-विशेष में प्रवेश करता है अथवा नहर से सम्बन्धित किसी सार्वजनिक कार्य को करता है)।" कुछ विद्वान् 'ति-वस-सत' का अनुवाद '(नन्द राजा के) १०३वें वर्ष में' करते हैं, पर डा० के० पी० जायसवाल, डा० आर० डी० बनर्जी आदि विद्वानों ने इसका अर्थ "३०० वर्ष" ही किया है। (द्रष्टव्य, *Journal of Bihar and*

Orissa Research Society, Dec. 1917, pp. 425 ff,) । डा० शान्तिलाल शाह ने लिखा है: "ति-वस-सत का अर्थ निश्चित रूप से ३०० वर्ष है, १०३ वर्ष नहीं (देखें, डा० बनर्जी का लेख *J.B.O.R.S.*Vol. III, p. 496 ff.) । मैं इसके साथ यह जोड़ना चाहता हूँ कि 'वर्ष' शब्द का प्रयोग समास में हुआ है, इसलिए 'सत' शब्द एक वचन में प्रयुक्त हुआ है, न कि बहुवचन में ।" (*Chronological Problems*, p. 41, foot-note)

इस शिलालेख से यह स्पष्ट होता है कि उक्त नन्द राजा खारवेल के राज्य-काल के ५वें वर्ष से ३०० वर्ष पूर्व हुआ था । डा० जायसवाल ने यह भी प्रमाणित किया है कि यह नन्द राजा नन्दीवर्धन ही था (*op. cit.* Vol. XIII, p. 240) । उक्त शिलालेख की सोलहवीं पंक्ति में यह भी बताया गया है कि खारवेल के राज्य-काल का तेरहवां वर्ष मौर्य संवत् के १६५वें वर्ष में पड़ता है । शिलालेख की पंक्ति इस प्रकार है :

"पाणंतरिय सठिवससत राजा मुरियकाले वोच्छिनं च चोयठि-अग सतक तुरियं उपादयति ।" -"उसने (खारवेल ने) राजा मुरिय-काल का १६४ वां वर्ष जब समाप्त ही हुआ था (वोच्छिनं) १६५वें वर्ष में (अगली पंक्तियों में उल्लिखित चीजों को) करवाया ।" इस पंक्ति के अर्थ के विषय में भी सभी विद्वान् एकमत नहीं हैं । कुछ विद्वान् इसमें किसी तारीख का उल्लेख हुआ है, ऐसा नहीं मानते, जबकि कुछ विद्वानों ने इसका खण्डन किया है (द्रष्टव्य, *Chronological Problems*, pp. 47-8) । सुप्रसिद्ध इतिहासकार डा० जे० रैपसन ने इस विषय में यह टिप्पणी की है : "क्या इस शिलालेख में तारीख का उल्लेख हुआ है, यह मूलभूत प्रश्न भी अब तक विवादास्पद है । कुछ विद्वान् मानते हैं कि सोलहवीं पंक्ति से यही तात्पर्य निकलता है कि यह शिलालेख मौर्य राजाओं के (अथवा राजा के) १६५वें वर्ष में लिखा गया । जबकि अन्य कुछ विद्वान् ऐसी कोई तारीख का उल्लेख हुआ है, ऐसा नहीं मानते । यद्यपि इस प्रकार की समस्याओं पर विचार-विमर्श करना प्रस्तुत ग्रन्थ के क्षेत्र से बाहर की बात है, फिर भी यह बताया जा सकता है कि किसी भी रूप में यह शिलालेख ईसा-पूर्व द्वितीय शताब्दी के लगभग मध्य का

है। हमें समान उदाहरणों से ज्ञात होता है कि राज्यवंशों के संवत् का प्रारम्भ प्रायः वंश-संस्थापक के आदि काल से माना जाता है। इसलिए मौर्य संवत् का प्रारम्भ चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यभिषेक-काल ई० पू० ३२१ से माना जा सकता है तथा इसी संवत् का प्रयोग इस शिलालेख में हुआ हो, तो शिलालेख का समय ई० पू० १५६ होना चाहिए और खारवेल के राज्यारम्भ का समय ई० पू० १६९ के लगभग होना चाहिए। इस आनुमानिक काल-निर्णय के साथ इस तारीख से सम्बन्धित अन्य तथ्य भी संगत होते हैं।

"पुरातत्त्वीय दृष्टि से चिन्तन करने पर खारवेल के हाथीगुम्फा के शिलालेख व नागनिक के नानाघाट के शिलालेख का समय वही आता है, जो कृष्ण के नासिक-शिलालेख का है (Buhler, *Archaeological Survery of Western India*, Vol.V.p.71; *Indsche Palaeographie*, p.39)। इसलिए यदि ऐसा माना भी जाये कि खारवेल के शिलालेख में तारीख का कोई उल्लेख नहीं है, तो भी यह मानने के लिए पर्याप्त प्रमाण हैं कि खारवेल ई० पू० द्वितीय शताब्दी के पूर्वार्ध में हुए शातकर्णी का समकालीन था। इतना ही नहीं, हाथीगुम्फा-शिलालेख में ही शातकर्णी का उल्लेख खारवेल के प्रतिस्पर्धी के रूप में हुआ है तथा यह पूर्ण सम्भावना के साथ प्रतीत होता है कि वह नानाघाट-शिलालेख में उल्लिखित शातकर्णी से अभिन्न था।" (*Cambridge History of India*, Vol. 1, pp. 281-2)

इस प्रकार मौर्य-सम्वत् का प्रारम्भ ई० पू० ३२२ में (चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्याभिषेक-काल) मानने पर खारवेल का राज्याभिषेक-काल ई० पू० १७० में आता है और इसके राज्य-काल का पाँचवाँ वर्ष ई० पू० १६६ में आता है। इससे ३०० वर्ष पूर्व अर्थात् ई०पू० ४६६ में नन्द राजा ने कलिंग पर आक्रमण किया था, यह प्रमाणित होता है। इसी नन्द राजा का उल्लेख हाथीगुम्फा शिलालेख की १२वीं पंक्ति में भी किया गया है। वहाँ बताया गया है कि अपने राज्य के बारहवें वर्ष में खारवेल ने उत्तरापथ के राजाओं में आतंक फैला दिया, मगध के लोगों में भय उत्पन्न

कर दिया, अपने हाथियों को 'सुओ गरिगेय' में प्रविष्ट करवाया, मगधराज वृहस्पतिमित्र को नीचा दिखाया, नन्द राजा के द्वारा अपहृत जैन मूर्ति को कलिंग में वापिस ले आया तथा अंग व मगध से विजय के प्रतीक रूप कुछ रत्न प्राप्त किये। (द्रष्टव्य, *J.B.O.R.S.*, Vol.IV, p.401, Vol.XIII p.732)। इन पंक्तियों के आधार पर खारवेल का ऊपर किया गया काल-निर्णय भी पुष्ट हो जाता है; क्योंकि इनमें उल्लिखित वृहस्पतिमित्र की पहचान शुंगवंशीय राजा पुष्यमित्र के साथ की जाती है, जिसका समय पौराणिक काल-गणना के आधार पर ई० पू० १८५-१५० स्वीकार किया गया है और खारवेल का १२वाँ वर्ष ई० पू० १५५ में आता है जो कि पुष्यमित्र के काल के साथ समकालीन ठहरता है। (द्रष्टव्य *Jainism in North India*, by Chiman Lal Jechand Shah. (Gujarati Translation), pp. 159-69; Dr. V. A. Smith, *Journal of Royal Asiatic Society*, 1918. p. 545; Dr. K. P. Jayswal, *op. cit.* vol. III, p, 447; Dr. Shanti Lal Shah, *op. cit.* pp. 53-55)

यह नन्द राजा नन्दीवर्धन ही था—हमारा यह मन्तव्य अनेक इतिहासकारों द्वारा स्वीकार किया गया है। डा० वी० ए० स्मिथ ने लिखा है: "(हाथीगुम्फा शिलालेख में) उल्लिखित नन्द-राजा पुराणों में बताया गया शिशुनाग-वंश का ९वाँ राजा नन्दीवर्धन ही है, ऐसा लगता है। यह आवश्यक लगता है कि इसको और उसके उत्तराधिकारी १०वें राजा महानन्दी को नन्दों में ही गिनना चाहिए, जो नन्द १०वें राजा तथा चन्द्रगुप्त के बीच हुए नव नन्दों से पृथक् थे। 'अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' के तृतीय संस्करण में मैंने नन्दीवर्धन का राज्यारोहण समय ई० पू० ४१८ में माना था, किन्तु अब यह समय ई० पू० ४५० या उससे भी पूर्व का होना चाहिए।" (—*Journal of Royal Asiatic Society*, 1918, p. 547). *Cambridge History of India* के प्रमुख सम्पादक ई० जे० रेपसन ने निष्कर्ष रूप में लिखा है: "(हाथीगुम्फा) शिलालेख की छठी पंक्ति में आये 'ति-वस सत' का अर्थ यदि '३०० वर्ष' होता है, तो यह निश्चित है कि ई०पू० पांचवी शताब्दी के मध्य में कलिंग

इस प्रकार अपने १८ (अथवा १६) वर्ष के राज्य-काल में नन्द-वंश की सुस्थापना कर प्रथम नन्द राजा नन्दीवर्धन ई० पू० ४५६ में दिवंगत हुआ[1]। प्रथम नन्द राजा नन्दीवर्धन का यह काल (ई० पू० ४७४-४५६) प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि की तिथि से भी पुष्ट होता है, जो उसका समकालीन सिद्ध हो चुका है और जिसका काल ई० पू० ४८०-४१० प्रमाणित हो चुका है।[2]

नन्द राजा के आधिपत्य में था और वह नन्द राजा मौर्यों के सुप्रसिद्ध पूर्ववर्ती राजाओं में से ही था; यह स्वाभाविक है।" (Vol. 1, p. 504)

१. नन्दीवर्धन का राज्यान्त ई० पू० ४५६ में हुआ; इसकी पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि अलबेरूनी के अनुसार नन्द-संवत् का आरम्भ विक्रम संवत् (ई० पू० ५६) से ४०० वर्ष पूर्व हुआ था। (द्रष्टव्य Dr. K.P. Jayswal, *op. cit.* Vol. XIII, p. 240; प्राचीन भारत, ले० गंगाप्रसाद मेहता, पृ० १०३)। यह सर्वथा सम्भव है कि नन्द-वंश के संस्थापक नन्दीवर्धन की मृत्यु के उपलक्ष में नन्द-संवत् का प्रारम्भ हुआ हो।

२. प्राचीन ब्राह्मण एवं बौद्ध परम्पराएँ पाणिनि को नन्दी राजा का समकालीन बताती हैं। प्रसिद्ध तिब्बती इतिहासकार तारनाथ के अनुसार पाणिनी महापद्म के पिता नन्द राजा महानन्दी का मित्र था (*History of Buddhism*, p. 1608)। बौद्ध-ग्रन्थ मंजुश्रीमूलकल्प में उल्लेख मिलता है :

तस्यानन्तरो राजा नन्दनामा भविष्यति।
पुष्पाख्ये नगरं श्रीमान् महासैन्यो महाबलः॥
भविष्यति तदा काले ब्राह्मणास्तार्किका भुवि॥
तेभिः परिवारितो राजा वै।
तस्य अन्यतमः पाणिनिर्नाम मानवाः॥

—पटल ३, पृ० ६११-२, (*Studies on Manjushrimulakalpa*, by Dr. Jayswal, p. 14)—"पुष्पपुर में नन्द राजा होगा और पाणिनि नामक ब्राह्मण उसके निकट का मित्र होगा। राजा की सभा में अनेक तार्किक होंगे और राजा उनको पारितोषिकों से सम्मानित करेगा।"

नन्दीवर्धन के पश्चात् उसका पुत्र महानन्दी नन्द-वंश का दूसरा राजा हुआ और उसने पुराणों के अनुसार ४३ वर्ष राज्य किया।[1] महानन्दी का समय ई० पू० ४५६-४१३ था। तत्पश्चात् महापद्म नन्द राजा हुआ और उसने भारत में 'एकराट्' साम्राज्य की स्थापना की।[2] पुराणों के अनुसार उसका राज्य-काल ८८ वर्ष का था।[3] इस प्रकार ई० पू० ३२५ में महापद्म नन्द का अन्त हुआ।[4] शेष नन्द राजाओं ने केवल १२ वर्ष राज्य किया और ई० पू० ३१३ में नन्द-वंश

इन प्रमाणों के अतिरिक्त सोमदेव के 'कथासरित्सागर' व क्षेमेन्द्र की 'वृहत्कथामंजरी' से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है कि पाणिनि नन्द राजा का समकालीन था। चीनी यात्री ह्य-एन-त्सांग का विवरण भी इस तथ्य की पुष्टि करता है (द्रष्टव्य, पाणिनिकालीन भारतवर्ष, ले० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ४६७-४८०)। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने साहित्यिक, ऐतिहासिक व पारम्परिक प्रमाणों के आधार पर सिद्ध किया है कि पाणिनि का समय ई० पू० ४८० - ४१० था। डा० अग्रवाल ने जैन काल-गणना की इस मान्यता को भी स्वीकार किया है कि नन्दों का काल ई० पू० ४७३-३२३ था। (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ४७३) डा० अग्रवाल इससे भी सहमत हैं कि ई० पू० ४६५ में प्रथम नन्द राजा नन्दीवर्धन पाटलिपुत्र में राज्य कर रहा था (वही, पृ० ४७४)। इतना ही नहीं, उन्होंने पाणिनि के व्याकरण का उद्धरण देकर यह प्रमाणित किया है कि नन्दीवर्धन प्रथम नन्द राजा था व उसका पुत्र महानन्दी द्वितीय नंद राजा था। (वही, पृ० ४७४)।

१. वायुपुराण, अ० ९९, श्लोक ३२६; मत्स्यपुराण, अ० २७१, श्लोक १८
२. वायुपुराण, अ० ९९, श्लोक ३२७
३. वही
४. यह ध्यान देने योग्य है कि डा० मिश्र ने भिन्न आधारों पर अपनी काल-गणना का निर्माण किया है, फिर भी महापद्म नन्द का काल ई० पू० ४१३-३२५ माना है।

का अन्त हुआ।[1]

इस प्रकार शिशुनाग-वंश से लेकर मौर्य-वंश की स्थापना तक समग्र काल-गणना का पुनर्निर्माण किया जा सकता है। इसको काल-क्रम-तालिका के रूप में इस प्रकार रखा जा सकता है :

घटना	तिथि (ई०पू०)
शिशुनाग वंश की स्थापना शिशुनाग का राज्याभिषेक	८०७
काकवर्ण का राज्याभिषेक	७४७
क्षेमवर्धन ,, ,,	७११
क्षेमजित् ,, ,,	६६१
प्रसेनजित् ,, ,,	६२५
बिम्बिसार ,, ,,	५८२
अजातशत्रु ,, ,,	५४४

१. चन्द्रगुप्त मौर्य ने ई० पू० ३२२ में मगध में नन्द-वंश का अन्त कर दिया, पर नन्दों का राज्य अवन्ती में ई० पू० ३१३ तक चलता रहा। जब ई०पू० ३१३ में चन्द्रगुप्त मौर्य ने अवन्ती का राज्य जीत लिया, तब वहाँ भी नन्द-वंश का अन्त हो गया।

कुछ इतिहासकारों ने प्रथम दो नन्द राजाओं नन्दीवर्धन व महानन्दी को पूर्वनन्द और महापद्म नन्द तथा उसके वंशजों को नवनन्द अथवा नये नन्द के रूप में भी माना है। (द्रष्टव्य, Dr. Shantilal Shah, *Chronological Problems*, pp. 34-37 ; E, J. Rapson, *Cambridge History of India*, pp. 289-90 ; Dr. K.P. Jayswal, *J.B.O.R.S.* Sept, 1915, p. 21)

घटना	तिथि (ई०पू०)
उदायी का राज्याभिषेक (मगध की मुख्यगद्दी पाटलिपुत्र में)	४६७
दर्शक या नागदशक का राज्याभिषेक (मगध की शाखा राजगृह में)	(४६७)
अनिरुद्ध-मुण्ड का राज्याभिषेक	४८१
नन्द-वंश की स्थापना नन्दीवर्धन का राज्याभिषेक (पाटलिपुत्र में)	४७४
नन्दीवर्धन का राज्याभिषेक (अवन्ती में)	४६७
महानन्दी का राज्याभिषेक	४५६
महापद्म नन्द का राज्याभिषेक	४१३
महापद्म नन्द के आठ पुत्रों का राज्याभिषेक	३२५
मौर्य-वंश की स्थापना चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्याभिषेक (मगध में)	३२२
,, ,, ,, ,, (अवन्ती में)	३१३[1]

१. महावंश, डा० स्मिथ व डा० शान्तिलाल शाह द्वारा दी गई काल-गणना के साथ इसकी तुलना की जा सकती है :

१. महावंश की काल-गणना तालिका

(बुद्ध-निर्वाण-तिथि ई० पू० ५४४ मानने से तथा बुद्ध का निर्वाण अजातशत्रु के ८वें वर्ष में मानने से निम्न तिथियां राज्याभिषेक-काल बताती हैं।)

राजा	राज्यत्व-काल	तिथि (ई० पू०)
अजातशत्रु	३२	५५१
उदायीभद्र	१६	५१९
अनिरुद्ध-मुण्ड	८	५०३
नागदसक	२४	४९५
सुसुनाग	१८	४७१
कालाशोक	२८	४५३
कालाशोक-पुत्र	२२	४२५
नव नन्द	२२	४०३
चन्द्रगुप्त मौर्य	२४	३८१

२. डा० स्मिथ *(Oxford History of India)*, p. 70

राजा	राज्यत्व-काल	तिथि (ई० पू०)
बिम्बिसार	२८	५८२
अजातशत्रु	२७	५५४
दर्शक	२४	५२७
उदय	२३	५०३
नन्दीवर्धन		४८० ?
महानन्दी		
महापद्मनन्द, महापद्मनन्द के पुत्र	९१	४१३
चन्द्रगुप्त		३२२ (? ३२५)

३. डा० शान्तिलाल शाह *(Chronological Problems)*

राजा	राज्यत्व-काल	तिथि (ई० पू०)
अजातशत्रु	३२	५५१
दर्शक	१८	५१९

बुद्ध-निर्वाण-काल : परम्परागत तिथियाँ

महावीर का निर्वाण-काल जितना असंदिग्ध बनाया जा सका है, बुद्ध के निर्वाण-काल को उतना असंदिग्ध बना पाना इतना सहज नहीं है। बुद्ध-निर्वाण-काल के सम्बन्ध में सहस्रों वर्ष पूर्व भी संदिग्धता थी और आज भी वह बहुत-कुछ अवशिष्ट है। चीनी यात्री फाहियान, जो ई० सन् ४०० में यहाँ आया था, लिखता है : "इस समय तक निर्वाण से १४९७ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।"[1] इससे बुद्ध-निर्वाण का समय ई० पू० १०९७ के आस-पास आता है। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यु-एन-त्सांग ई० सन् ६३० में भारत-यात्रा पर आया था। वह लिखता है : "श्री बुद्धदेव ८० वर्ष तक जीवित रहे। उनके निर्वाण की तिथि के विषय में बहुत मतभेद है। कुछ लोग वैशाखी पूर्णिमा को उनकी निर्वाण-तिथि मानते हैं। सर्वास्तिवादी कार्तिकी पूर्णिमा को निर्वाण-तिथि मानते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि निर्वाण को १२०० वर्ष हो चुके हैं, तो कुछ लोग कहते हैं कि १५०० वर्ष बीत चुके हैं। कुछ लोग कहते हैं कि निर्वाण-काल को अभी तक ९०० वर्षों से कुछ अधिक समय हुआ है।"[2] इन धारणाओं से तो बुद्ध-निर्वाण-काल क्रमशः ई०पू० ५७०, ई०पू० ८७० तथा ई०पू० २७० से कुछ अधिक वर्ष आता है।

उक्त अवधियाँ तो केवल किंवदन्तियाँ-मात्र ही रह जाती हैं। बौद्ध

उदायन	३३	५०१
पूर्वनन्द		
नन्दीवर्धन	२०	४६७
काकवर्ण व महानन्दी	४३	४४७
नवनन्द		
नन्द (नाई)	२२	४०४
नन्द 'द्वितीय' (महापद्म)	६६	३८२
चन्द्रगुप्त		३१६

१. भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ० १६४।

२. वही, पृ० १६४।

परम्पराओं के आधार पर वर्तमान में अनेक तिथियाँ प्रचलित हैं। एक तिथि-क्रम सिलोनी गाथा महावंश पर आधारित है।[1] इसके अनुसार बुद्ध-निर्वाण ई० पू० ५४४ में हुआ था। दूसरा तिथि-क्रम 'केण्टन के बिन्दु-संग्रह' (Cantonese Dotted Record) पर आधारित है।[2] इस परम्परा का इतिहास इस प्रकार है : जब बुद्ध का निर्वाण हुआ, भिक्षु संघभद्र ने यह सूचना चीन पहुँचाई। वहाँ के केण्टन नगर के लोगों ने एक बिन्दु-संग्रह (Dotted Record) की व्यवस्था की, जिसका प्रारम्भ भगवान् बुद्ध की निर्वाण-तिथि से किया गया तथा उसमें प्रतिवर्ष एक बिन्दु और जोड़ दिया जाता। यह परम्परा ई० सन् ४८९ तक चलती रही तथा जब समस्त बिन्दु गिने गये, तो उनकी संख्या ९७५ ज्ञात हुई। इसके अनुसार ई० पू० ४८६ में गौतम बुद्ध का निर्वाण-समय निर्धारित किया गया।

तीसरा तिथि-क्रम चीनी तुर्किस्तान में प्रचलित है। खुतान (चीनी तुर्किस्तान) में पाये गये बौद्ध ग्रन्थों में दी गई एक दन्त-कथा से पता लगता है कि बुद्ध-निर्वाण के २५० वर्ष बाद अशोक हुए। उस दन्त-कथा से यह भी पता चलता है कि अशोक चीन के बादशाह शेह्वांगटी का समकालीन था। शेह्वांगटी ने ई० पू० २४६ से ई० पू० २१० तक राज्य किया था।[3] इस तिथि-क्रम के आधार पर कुछ एक विद्वानों ने बुद्ध का निर्वाण-काल २४६+२५०=ई० पू० ४९६ भी माना है।[4]

इतिहासकारों का अभिमत

आश्चर्य की बात यह है कि बहुत शोध-कार्य हो जाने के पश्चात् भी

---

१. *Early History of India*, by Vincent Smith, p. 49.

२. *Journal of Royal Asiatic Society*, Great Britain, 1905, p. 51.

३. Sarat Chandra Das, *Journal of Royal Asiatic Society*, Bengal, 1886; pp. 193-203; Tchang, *Synchronismes Chinois*, *Early History of India*, by V.A. Smith, pp. 49-50.

४. बुद्धकालीन भारत, ले० जनार्दन भट्ट, पृ० ३७१.

इतिहासकार किसी सर्वसम्मत निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके हैं। अधिकांश विद्वान् इस विषय में अपना-अपना नया मत स्थापित करते जा रहे हैं। विद्वानों द्वारा अभिमत बुद्ध-निर्वाण-काल निम्न प्रकार से हैं :

	तिथि ई० पू०
ई० जे० थॉमस और जापानी विद्वान्[1]	३८६
राइस डेविड्स[2]	४१२
मैक्सम्यूलर[3] व शार्पेण्टियर[4]	४७७
ज० कनिंगहेम[5] व दीवानबहादुर स्वामी कन्नुपिल्लै[6]	४७८
ओल्डनबर्ग[7]	४८०
फर्ग्यूसन[8]	४८१
डा० व्यूल्हर[9]	४८३ व ४७१ के बीच
डा० व्हीलर, गाइगर,[10] डा० फ्लीट[11]	४८३
तुकाराम कृष्ण लाडू,[12] राहुल सांकृत्यायन,[13] डा० जेकोबी[14]	४८३

१. *B.C. Law Commemoration Volume*, vol. II, pp. 18-22.
२. *Buddhism*, pp. 212-13.
३. *Introduction to Dhammpada*, S.B.E., vol. X, p. XII.
४. *Indian Antiquary*, vol. XLIII, 1914, pp. 126-133.
५. *Corpus Inscriptionum Indicarum*, vol. I, Introduction, p. V.
६. *An Indian Ephemenis*, pt. 1, 1922, pp. 471ff.
७. Introduction to *Vinaya Pitaka, S.B.E.*, vol. XIII, p. 22 ; *The Religions of India*, by E.W. Hopkins, p. 310.
८. *Journal of Royal Asiatic Society*, IV, p. 81.
९. *Indian Antiquary*, VI, p. 149ff. (Also, see *Buddhism in Translation*, p. 2.
१०. *Mahāvamsa*, Geiger's Translation, p. 28 ; *Journal of Royal Asiatic Society*, 1909, pp. 1-134.
११. *Journal of Royal Asiatic Society*, 1908, pp. 471 ff.
१२. वीर-निर्वाण-संवत् और जैन काल-गणना, पृ० १५५.
१३. बुद्धचर्या, भूमिका, पृ० १.
१४. श्रमण, वर्ष १३, अंक ६, पृ० ११.

	तिथि ई० पू०
डा० एच० सी० रायचौधुरी[१]	४८६
डा० स्मिथ की दूसरी शोध के अनुसार[२]	४८७
प्रो० कर्न[३]	४८८
डा० स्मिथ की प्रथम शोध के अनुसार[४]	५४३
पं० धर्मानन्द कोसम्बी[५]	५४३
पं० भगवानलाल इन्दरजी[६]	६३८

उक्त तथ्यों से यह निष्कर्ष तो सहज ही निकल जाता है कि बाईस अभिमतों में उन्नीस अभिमत ऐसे हैं, जो बुद्ध का निर्वाण-समय ई० पू० ५१७ के पश्चात् ही मानते हैं। यदि ई० पू० ५२७ को महावीर-निर्वाण का सही समय मान लिया जाता है, तो उक्त उन्नीस अभिमतों के अनुसार भगवान् बुद्ध ही उत्तरवर्ती ठहरते हैं।

इन अभिमतों में क्रमिक परिष्कार होता गया है, फिर भी इनमें से एक भी अभिमत ऐसा नहीं है जो महावीर, बुद्ध, गोशालक, श्रेणिक, कोणिक आदि से सम्बन्धित समस्त घटना-प्रसंगों को साथ लेकर चल सकता हो। इसका तात्पर्य यह भी निकलता है कि अब तक के हमारे चिन्तन में कोई मौलिक भूल रही है। वह है—बौद्ध काल-गणना का आधार। बुद्ध के जन्म और निर्वाण के काल-निर्धारण में बौद्ध काल-गणना का ही आधार मुख्यतया माना जाता रहा है। यही कारण हो सकता है कि उनके जीवन-संस्मरणों व काल-क्रम में पर्याप्त संगति नहीं बैठ रही है।

१. *Political History of Ancient India*, p. 227.
२. *Early History of India*, pp. 46-47.
३. *Der Buddhismus*, vol. II, p. 63. Jaor-Telling.
४. *Early History of India*, 1924, pp. 49-50.
५. भगवान् बुद्ध, पृ० ८६, भूमिका, पृ० १२.
६. *Indian Antiquary*, vol. XIII, 1885, pp. 411 ff.

बुद्ध का तिथि-क्रम

ऐसी स्थिति में जब कि बुद्ध के जन्म और निर्वाण का काल-क्रम स्वयं में संदिग्ध और अनिश्चित ही ठहरता है, महावीर और उनकी समसामयिकता को पकड़ने के लिए, उनके जीवन-प्रसंग ही आधारभूत प्रमाण बन जाते हैं। बुद्ध के समय में उनके सहित सात धर्मनायक थे। बुद्ध का सम्बन्ध उन सब में अच्छा या बुरा महावीर के साथ सबसे अधिक रहा है, यह त्रिपिटक स्वयं बतला रहे हैं; अतः महावीर और बुद्ध के जीवन-प्रसंगों की संगति बुद्ध के निर्वाण-काल को समझने में सहायक हो सकती है।

आगमों और त्रिपिटकों के अंचल में निम्न चार निष्कर्ष सुस्पष्ट हैं :

१. बुद्ध महावीर से आयु में छोटे थे, अर्थात् महावीर जब प्रौढ़ (ज्येष्ठ) थे, तब बुद्ध युवा थे।

२. बुद्ध को बोधि-लाभ होने से पूर्व ही महावीर को कैवल्य-लाभ हो चुका था और वे धर्मोपदेश की दिशा में बहुत-कुछ कर चुके थे।

३. गोशालक का शरीरान्त महावीर के निर्वाण से १६ वर्ष पूर्व हुआ, अर्थात् उस समय महावीर ५६ वर्ष के थे।

४. गोशालक की विद्यमानता में बुद्ध बोधि प्राप्त कर चुके थे[1] तथा महाशिलाकंटक, रथमुशल-संग्राम के समय महावीर, बुद्ध और गोशालक—तीनों

---

१. पूर्ण काश्यप आदि छहों ही तीर्थंकर बुद्ध की बोधि-प्राप्ति के पहले से ही अपने को तीर्थंकर घोषित कर धर्म-प्रचार करते थे व बुद्ध की बोधि-प्राप्ति के समय सभी विद्यमान थे। जिस समय बुद्ध को बोधि प्राप्त हुई, उस समय उनको गया से सारनाथ जाते हुए रास्ते में एक उपक नामक आजीवक साधु मिला था। बुद्ध ने उसे कहा था—'मुझे तत्त्व-बोध हुआ है।' परन्तु उपक को उस सम्बन्ध में विश्वास नहीं हुआ। 'होगा शायद' कहकर दूसरे मार्ग से वह चलता बना (देखें, विनयपिटक, महावग्ग १; भगवान् बुद्ध, धर्मानन्द कोसम्बी, पृ० १३७)। इस प्रसंग से यह स्पष्ट हो जाता है कि बुद्ध की बोधि-प्राप्ति के समय मक्खलि गोशाल एक प्रसिद्ध आचार्य हो चुका था और उसके शिष्य यत्र-तत्र विहार करते थे।

ही वर्तमान थे।

गोशालक की मृत्यु के समय महावीर ५६ वर्ष के थे और बोधि-प्राप्त बुद्ध उस समय कम-से-कम ३५ वर्ष के तो होते ही हैं। ७२ वर्ष की आयु में महावीर का निर्वाण हुआ। उस समय बुद्ध की अवस्था कम-से-कम ५१ वर्ष की तो हो ही जाती है। बुद्ध की समग्र आयु ८० वर्ष होती है। इस प्रकार महावीर-निर्वाण के अधिक-से-अधिक २९ वर्ष बाद उनका निर्वाण होता है।

यह तो दोनों के निर्वाण-काल में अधिक-से-अधिक अन्तर की सम्भावना हुई। अब देखना यह है कि दोनों के निर्वाण-काल में कम-से-कम अन्तर कितना सम्भव हो सकता है। गोशालक की मृत्यु से पूर्व यदि बुद्ध को बोधि-लाभ होता है, तो अधिक-से-अधिक १४ वर्ष पूर्व हो सकता है, क्योंकि इससे अधिक मानने में निष्कर्ष-संख्या २ में हानि आती है। यदि इसे हम सम्भव मानें तो महावीर और बुद्ध के निर्वाण में कम-से-कम १५ वर्ष का अन्तर आ जाता है।

इस प्रकार दोनों के निर्वाण में कम-से-कम १५ वर्ष का और अधिक-से-अधिक २९ वर्ष का अन्तर आता है। इतने वर्षों के इस सम्भावित अन्तर में से किसी निश्चित अवधि तक पहुँचने के लिए हमें एक मार्ग और मिल जाता है। अंगुत्तर निकाय की अट्ठकथा[1] में बुद्ध के चातुर्मासों का क्रमिक इतिहास मिलता है। उसके अनुसार बुद्ध राजगृह में बोधि-लाभ के पश्चात् दूसरा, तीसरा, चौथा, सत्रहवाँ व बीसवाँ वर्षावास बिताते हैं।[2] दीघ निकाय सामञ्ञफल सुत्त के अनुसार राजा अजातशत्रु राजगृह-वर्षावास में बुद्ध का साक्षात्कार करता है, श्रामण्यफल पूछता है और पितृ-हत्या का अनुताप करता

---

१. २-४-५

२. राईस डेविड्स ने भगवान् बुद्ध का चौथा चातुर्मास महावन (वैशाली) में माना है (*Buddhism*, by Rhys Davids quoted in *Buddha : His life, His order, His teachings*', by M. N. Shastri, p. 120) ; किन्तु अट्ठकथा के अनुसार तो पाँचवाँ चातुर्मास वैशाली में हुआ था। इसीप्रकार अट्ठकथा में छठा वर्षावास मंकुल पर्वत पर बताया है, जबकि राईस डेविड्स ने पाँचवाँ वर्षावास मंकुल पर्वत पर बताया है। लगता है, उन्होंने गिनती में एक वर्ष की भूल की है।
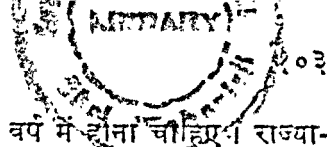
है। यह सब अजातशत्रु के राज्यारोहण के प्रथम वर्ष में होना चाहिए। राज्यारोहण के अनन्तर ही वह शोक-संतप्त होकर अपनी राजधानी राजगृह से चम्पा ले जाता है। यदि श्रामण्यफल आदि की घटनाओं को सत्रहवें या बीसवें चातुर्मास में हुई मानें, तो निष्कर्ष-संख्या २ विघटित होती है। क्योंकि श्रेणिक की मृत्यु व कोणिक के राज्यारोहण की घटना जैन मान्यता के अनुसार महावीर की कैवल्य-प्राप्ति के तेरहवें वर्ष के आस-पास घटित होती है। इसलिए बुद्ध का यह वर्षावास दूसरे से चौथे तक ही होना चाहिए। इस प्रकार, महावीर की कैवल्य-प्राप्ति का वह तेरहवाँ वर्ष होता है और बुद्ध की बोधि-प्राप्ति का यह दूसरा, तीसरा या चौथा वर्ष होता है, अर्थात् उस समय महावीर की आयु ५५ वर्ष की तथा बुद्ध की आयु ३६, ३७ या ३८ वर्ष की होती है। महावीर बुद्ध से १७, १८ या १९ वर्ष बड़े होते हैं। इसी आधार पर उनके निर्वाण का अन्तर २५, २६ या २७ वर्ष आ जाता है।

उक्त तीनों वर्षों में से किसी एक निश्चित वर्ष पर पहुँचने के लिए भी एक छोटा-सा मार्ग मिल जाता है। यदि हम राजगृह में बुद्ध के दूसरे या तीसरे वर्षावास को लेते हैं, तो राजा श्रेणिक और बुद्ध की समसामयिकता एक या दो ही वर्ष ठहरती है। पिटकों की अभिव्यक्ति को देखते हुए उनकी समसामयिकता कुछ विस्तृत होनी चाहिए। अतः राजगृह के चतुर्थ वर्षावास को ही ग्रहण करना सुसंगत है, जिससे श्रेणिक और बुद्ध की समसामयिकता भी पर्याप्त विस्तृत हो जाती है। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं कि महावीर और बुद्ध के निर्वाण में सम्भव अन्तर २५ वर्ष का है।

यह अन्तर निकेवल जीवन-प्रसंगों पर आधारित है। इन दोनों युग-पुरुषों को किसी काल में ले जायें, तो भी उक्त समीक्षा और निष्कर्ष साथ दे सकते हैं। विषय की परिपूर्णता के लिए यहाँ पर भी काल-क्रम की दृष्टि से विचार कर लेना आवश्यक है। डा० राधाकुमुद मुकर्जी[1] के शब्दों में काल-क्रम

---

१. Chronology is essential to biography. An individual cannot rank as a historical person unless his life and work are placed in time.

—*Chandragupta Maurya and His Times*, p. 2.

के साथ ही किसी को ऐतिहासिक पुरुष माना जा सकता है। यह बताया जा चुका है कि बुद्ध का काल-क्रम अपने-आप में निश्चित नहीं हो पा रहा है। साथ-साथ यह भी बताया जा चुका है कि महावीर का काल-क्रम स्वयं में सर्व-सम्मत और निश्चित-जैसा है। अतः उक्त जीवन-प्रसंगों के निष्कर्ष को महावीर की कालावधि के साथ लेंगे, तो बुद्ध के जन्म और निर्वाण का काल-क्रम भी स्वयं सामने आ जायेगा। महावीर और बुद्ध के निर्वाण का अन्तर २५ वर्ष है। महावीर का निर्वाण-काल ई०पू० ५२७ है; अतः बुद्ध का निर्वाण ई०पू० ५०२ में होता है। जब हम उनके निर्वाण-समय को पा लेते हैं, तो उनके मूलभूत जीवन-प्रसंगों की काल-गणना निम्न प्रकार से बन जाती है :

ई० पू० ५८२	जन्म
ई० पू० ५५४	गृह-त्याग
ई० पू० ५४७	बोधि-प्राप्ति
ई० पू० ५४४	अजातशत्रु का बुद्ध से मिलन — श्रामण्यफल पूछना
ई० पू० ५०२	निर्वाण

महावीर और बुद्ध के जीवन-प्रसंगों का तुलनात्मक काल-क्रम इस प्रकार बनता है :

	महावीर	बुद्ध
जन्म	ई० पू० ५९९	ई० पू० ५८२
गृह-त्याग	ई० पू० ५६९	ई० पू० ५५४
बोधि (कैवल्य)	ई० पू० ५५७	ई० पू० ५४७
निर्वाण	ई० पू० ५२७	ई० पू० ५०२

इस प्रकार महावीर बुद्ध से आयु में १७ वर्ष बड़े थे। उनके जीवन-काल की समसामयिकता ई० पू० ५८२ से ई० पू० ५२७ (=५५ वर्ष) रही। उनके धर्म-प्रचार-काल की समसामयिकता ई० पू० ५४७ से ई० पू० ५२७ (=२० वर्ष) रही।

बुद्ध का निर्वाण अजातशत्रु के राज्य-काल के ४२ वर्ष में हुआ। बुद्ध के निर्वाण के १८० वर्ष बाद चन्द्रगुप्त मगध की गद्दी पर बैठा तथा २२६ वर्ष बाद अशोक का राज्य-काल स्थापित हुआ।

: ८ :

निष्कर्ष की पुष्टि में

बुद्ध-निर्वाण-सम्बन्धी उक्त निष्कर्ष नितान्त ऐतिहासिक और गाणितिक पद्धति से प्रसूत हुए हैं; इसलिए वे स्वतःप्रमाण हैं ; पर चूँकि ये निष्कर्ष इतिहास के क्षेत्र में प्रथम रूप से ही प्रस्तुत हो रहे हैं, अतः इनकी पुष्टि में कुछ अन्यान्य प्रमाण अनपेक्षित नहीं हैं। कुछ एक ऐतिहासिक और पारम्परिक प्रमाण, जो उक्त तथ्यों की साक्षात् पुष्टि करते हैं, वे क्रमशः दिये जा रहे हैं।

१. तिब्बती परम्परा

तिब्बती बौद्ध परम्परा के अनुसार जिस दिन बुद्ध का जन्म हुआ, उसी दिन अवन्ती के राजा चण्ड प्रद्योत (महासेन) का भी जन्म हुआ; तथा जिस दिन बुद्ध को बोधि-लाभ हुआ, उसी दिन चण्ड-प्रद्योत का राज्यारोहण हुआ।[1] प्रद्योत राजा का उल्लेख बौद्ध, जैन और पौराणिक—तीनों ही परम्पराओं में प्रकीर्ण रूप से मिलता है। वायु,[2] मत्स्य,[3] भागवत[4] आदि पुराणों में तथा कथासरित्सागर,[5] स्वप्नवासवदत्तम्, मृच्छकटिक,[6] जैन ग्रन्थ आवश्यक-निर्युक्ति-दीपिका[7] आदि ग्रन्थों के अनुसार चण्ड प्रद्योत राजा का पुत्र पालक होता है, जोकि भगवान् महावीर की निर्वाण-रात्रि में ही अवन्ती की राजगद्दी

---

१. *Life of Buddha*, by Rockhill, p. 17-32.
२. वायुपुराण, अ० ९९, श्लोक ३१२.
३. मत्स्यपुराण, अ० २७१, श्लोक ३.
४. भागवतपुराण, स्कन्ध १२, अ० १, श्लोक ३.
५. कथासरित्सागर, ३-५-५८
६. शूद्रक-रचित
७. भाग २, पृ० ११०-११, गा० १२८२.

पर बैठा।[1] इससे यह स्पष्ट होता है कि जिस प्रकार प्रद्योत बुद्ध के साथ जन्मा और बुद्ध के बोधि-लाभ के दिन राजसिंहासन पर बैठा, उसी तरह भगवान् महावीर की निर्वाण-तिथि पर ही उसका राज्यान्त हुआ। पौराणिक काल-गणना के अनुसार यह नितान्त असंदिग्ध है—त्रयोविंशत् समा राजा भविता स नरोत्तमः[2] अर्थात् चण्ड प्रद्योत का राज्य २३ वर्ष रहा।

बुद्ध के बोधि-लाभ के दिन प्रद्योत राजा बना, जबकि बुद्ध ३५ वर्ष के थे और महावीर के निर्वाण-दिवस पर प्रद्योत का राज्यान्त हुआ, जबकि महावीर ७२ वर्ष के थे। अर्थात् प्रद्योत के राज्याभिषेक के समय महावीर ७२—२३=४९ वर्ष के होते हैं। इससे भी निष्कर्ष आता है कि महावीर बुद्ध से १४ वर्ष ज्येष्ठ थे। यह निष्कर्ष भी पूर्वोक्त १७ वर्ष की ज्येष्ठता के बहुत निकट पहुंच जाता है।

२. चीनी तुर्किस्तान का तिथि-क्रम

प्रस्तुत निष्कर्ष बौद्ध परम्परा में बताये गये चीनी तुर्किस्तान वाले तिथि-क्रम के साथ भलीभाँति संगत हो जाता है। उस परम्परा में राजा अशोक और राजा खोह्लांगटी की समसामयिकता को मानकर बुद्ध-निर्वाण और अशोक का अन्तर २५० वर्ष माना गया है। श्री जनार्दन भट्ट ने खोह्लांगटी को ई० पू० २४६ में मानकर बुद्ध-निर्वाण ई० पू० ४९६ में माना है। ई० पू० ५०२ का समय, जो पीछे हम बुद्ध-निर्वाण का समय मान आये हैं, उनमें और इसमें केवल ६ वर्ष का नगण्य-सा अन्तर रहता है। बुद्ध-निर्वाण और अशोक के बीच में जो २५० वर्ष का अन्तर माना गया है, वह समय वास्तव में वह है, जिसमें इतिहास-कारों ने तीसरी बौद्ध-संगीति का होना माना है,[3] जो कि अशोक के राज्य-काल में ई० पू० २५२ में हुई थी; अतः उक्त परम्परा के आधार से भी बुद्ध-निर्वाण-काल ई० पू० ५०२ ही आ जाता है।

एक अन्य तिब्बती परम्परा, जिसका उल्लेख डा० स्मिथ ने अपनी

---

१. तित्थोगाली पइन्नय, गा० ६२१.

२. वायुपुराण, अ० ९९, श्लोक ३११.

३. प्राचीन भारत का इतिहास, ले० डा० रमाशंकर त्रिपाठी, पृ० १२८.

'हिस्ट्री ऑफ इण्डिया'[1] में किया है, बताती है कि अशोक का राज्यारोहण बुद्ध-निर्वाण के २३४ वर्ष बाद हुआ।[2] इसमें भी बुद्ध-निर्वाण-काल २६९+२३४=५०३ ई० पू० आता है।

३. अशोक के शिलालेख

सम्राट् अशोक द्वारा उत्कीर्ण शिलाएँ व स्तम्भ सचमुच ही भारतीय इतिहास की आधार-शिला व आधार-स्तम्भ हैं। इन आधारों ने इतिहास के बहुत सारे संदिग्ध तथ्यों को असंदिग्ध बना दिया है। बुद्ध-निर्वाण-काल विषयक प्रस्तुत निष्कर्ष के सम्बन्ध में भी कुछ-एक शिलालेख सबल प्रमाण बनते हैं। सम्राट् अशोक द्वारा उत्कीर्ण अभिलेखों को निम्न विभागों में बाँटा गया है :

५ लघु शिलालेख
१४ बृहत् शिलालेख
४ लघु स्तम्भलेख
७ बृहत् स्तम्भलेख
३ गुहालेख
६ स्फुट शिलालेख

इनमें से लघु शिलालेख नं० १ में जो कि रूपनाथ, सहसराम और वैराट में उपलब्ध हुआ है, सम्राट् अशोक ने लिखा है : "देवानं[3] पिये एवं आहा (:—) सातिलेकानि अढतियानि वय सुमि पाका सवके[4] नो चु वाढि पकते; सातिलके चु छवछरे य सुमि हकं संघे उपेते।

---

१. पृ० ४४।
२. "Tibetan tradition reckons 10 reings from No. 26. Ajata'satru to No. 15, Asoka, incusive and places Asoka's accession in 234 A.B. (after Buddha)"—Rockhill, *Life of Buddha*, pp. 33, 233.
३. अशोक के धर्मलेख, ले० जनार्दन भट्ट।
४. सहसराम तथा वैराट के लेख में 'उपासके' है।

"वाढ़ि चु पकते। यि इमाय कालाय जम्बुदिपंसि अमिसा देवा हुसु ते दानि मिसा कटा। पकमयि हि एस फले। नो च एसा महतता पापोतवे। खुदकेन हि क।

"पि परूममिनेन सकिये पिपुले पि स्वग आरोधवे। एतिय अठाय च सावने कटे खुदका च उढाला च पकमंतु ति। अता पि च जानंतु इयं पकस।

"किति (?) चिरठतिके सिया इय हि अठे वढ़ि वढ़िसिति विपुल च वढ़िसिति। अपल थियेना दियढ़िय वढ़िसत (।) इय च अठे पवतिसु लेखापेत वालतहव च (।) अथि

"सिलाठमे सिलाठंभसि लाखापतवयत। एतिना च वयजनेना यावतक तुपक अहाले सवर विवसेतवायुति। व्युठेना सावने कटे २५६ सतविवासात।"

"देवताओं के प्रिय इस प्रकार कहते हैं—ढाई वर्ष से अधिक हुए कि मैं उपासक हुआ, पर मैंने अधिक उद्योग नहीं किया; किन्तु एक वर्ष से अधिक हुआ, जब से मैं संघ में आया हूँ, तब से मैंने अच्छी तरह से उद्योग किया हैं। इस बीच में जो देवता सच्चे माने जाते थे, वे अब झूठे सिद्ध कर दिये गये हैं। यह उद्योग का फल है। यह (उद्योग का फल) केवल बड़े ही लोग पा सकें, ऐसी बात नहीं है, ऐसी छोटे लोग भी उद्योग करें, तो महान् स्वर्ग का सुख पा सकते हैं। इसलिए यह अनुशासन लिखा गया कि "छोटे और बड़े उद्योग करें।" मेरे पड़ोसी राजा भी इस अनुशासन को मानें और मेरा उद्योग चिर-स्थित रहे। इस बात का विस्तार होगा और अच्छा विस्तार होगा। कम से कम डेढ़ गुना विस्तार होगा। यह अनुशासन यहाँ और दूर के प्रान्तों में पर्वतों की शिलाओं पर लिखा जाना चाहिए, जहाँ कहीं शिलास्तम्भ हों, वहाँ यह अनुशासन शिलास्तम्भों पर भी लिखा जाना चाहिए। इस अनुशासन के अनुसार जहाँ तक आप लोगों का अधिकार हो, वहाँ-वहाँ आप लोग सर्वत्र इसका प्रचार करें। यह अनुशासन (मैंने) उस समय लिखा, जब बुद्ध भगवान् के निर्वाण को २५६ वर्ष हुए थे।"

लघु शिलालेख नं० २ में, जो कि ब्रह्मगिरि, सिद्धपुर व जतिंग रामेश्वर में प्राप्त हुआ है, यही बात स्वल्प भिन्नता के साथ मिलती है। उसमें

सम्राट् अशोक लिखते हैं[1] :

"सुवंणगिरि ते अय पुतस महामातांण च वचनेन इसिलसि महामाता आरोगियं वतविया हेवं च वतविया। देवाणं पिये आणपयति।

"अधिकानि अढातियानि वय सुमि दियढिय वढिसिति। इयं च सावणे सावपते व्यूथेन २५६।"

सुवर्णगिरि से आर्यपुत्र (कुमार) और महामात्यों की ओर से इसिला के महामात्यों को आरोग्य कहना और यह सूचित करना कि देवताओं के प्रिय आज्ञा देते हैं कि अढ़ाई वर्ष से अधिक हुए डेढ़ गुना विस्तार होगा। यह अनुशासन (मैंने) बुद्ध के निर्वाण से २५६वें वर्ष में प्रचारित किया (या सुनाया था)।"

उक्त दोनों अभिलेखों में दो बातें विशेष ध्यान देने की हैं। अशोक का 'संघ उपेत' होना और बुद्ध-निर्वाण के २५६ वर्षों बाद इस लेख का लिखा जाना।

उक्त लेखों में प्रयुक्त 'संघे उपेते' शब्दों पर नाना अनुमान बाँधे गये हैं। डा० राधाकुमुद मुखर्जी ने इसकी चर्चा करते हुए लिखा है—"संघे उपेते इन शब्दों के द्वारा अशोक क्या कहना चाहता है, यह समझना कठिन है। इसका अनुवाद ऊपर जिस प्रकार से किया गया है, उसका अर्थ होता है कि वह संघ के साथ रहा, या संघ में प्रविष्ट हुआ या संघ के दर्शनार्थ गया; किन्तु इस बात को लेकर विद्वानों में बहुत बड़ा मतभेद है। कुछ विद्वानों का मत है कि अशोक सचमुच ही बौद्ध भिक्षु बन गया था। अन्य कुछ विद्वान् उक्त शब्दों का अर्थ करते हैं कि अशोक राजकीय तौर पर संघ के दर्शनार्थ गया और जैसा सिंहली गाथाएँ हमें सूचित करती हैं, उसने सार्वजनिक रूप से अपने धर्म की घोषणा की। इनमें से पहले अभिमत की पुष्टि चीनी यात्री इत्सिंग के इस कथन से होती है कि मैंने अशोक की एक मूर्ति देखी थी, जिसमें वह साधु के वेश में था। एक तीसरी सम्भावना यह भी है कि अशोक बिना साधुत्व स्वीकार किये ही एक वर्ष से अधिक साधु-संघ के साथ रहा।

"जो विद्वान् मानते हैं कि अशोक साधु बन गया था, उनमें भी

---

१. वही

फिर भिन्न-भिन्न मत हैं। कुछ कहते हैं कि जिस समय अशोक साधु-पर्याय में रहा, उस समय उसने सम्राट् पद छोड़ दिया होगा, क्योंकि भिक्षु-जीवन का राजकीय कर्तव्यों के साथ पालन होना सम्भव नहीं है। अन्य विद्वानों का कहना है कि बहुत सारे राजाओं के ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जो साथ-साथ साधु भी थे; अतः यह कल्पना करने की आवश्यकता नहीं है कि अशोक ने कुछ काल के लिए भी गद्दी का त्याग कर दिया हो।

'संघे उपेते' शब्दों का जो कुछ भी अर्थ लगाया जाये, इतना तो असंदिग्धतया कहा जा सकता है कि जब से अशोक संघ-उपेत हुआ, तब से उसने बौद्ध धर्म या उसके प्रचारार्थ अदम्य उत्साह दिखाया। न केवल उसने इन सिद्धान्तों के प्रसार के लिए भारत में तथा विदेशों में उपदेशकों के समूह-के-समूह भेजे, अपितु उसने स्वयं इस हेतु से यात्राएं कीं तथा इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए अन्य अनेक प्रयत्न किये।"[1]

---

१. "It is difficult to understand what Ashoka exactly intends by the expression *Sanghe Upete* which has been translated above to mean that he lived with, entered, or visited the Sangha, and the opinion of the scholars is sharply divided on this point. Some scholars hold that Ashoka actually became a Budhist monk (*bhikku*). Others, however, take the expression simply to mean that Asoka made a state-visit to the Sangha and publicly proclaimed his faith, as the Sinhalese Chronicle informs us. The former view is, however, supported by the statement of I-tsing that he actually saw a statue of Asoka dressed as a monk. A third possibility is that Asoka lived with the Sangha for more than a year, without taking orders.

"Among those who assume that Asoka become a monk, there is, again, a difference of opinion. Some hold that during the period Asoka was a monk he must have ceased to be a monarch, for monastic life is hardly compatible with royal duties. Others, however, point out

डॉ० मुखर्जी ने अपने विवेचन में 'संघे उपेते' शब्द के किसी अर्थ विशेष पर बल नहीं दिया है, पर उन सारे अर्थ-भेदों पर दृष्टिपात करने से यह सहज ही समझ में आता है कि अशोक के संघ-उपेत होने का सम्बन्ध उसकी ऐतिहासिक धर्म-यात्रा से ही होना चाहिए, जिसका उल्लेख अशोक के रुम्मिनदेई स्तम्भ-लेख में स्पष्ट मिलता है। इस अभिलेख में बताया गया है[1] :

देवान पियेन पियदसिन लाजिना वीसतिवसाभिसितेन अतन आगाच महीयिते। हिद बुधे जाते सक्य मुनीति सिला विगड़भीचा कालापित सिलाथमें च उसपापिते हिद भगवं जाते ति लुमिनिगामे उवलिके कटे अठभागिये च।"

"देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने राज्याभिषेक के २० वर्ष बाद स्वयं आकर (इस स्थान की) पूजा की। यहाँ शाक्य मुनि बुद्ध का जन्म हुआ था, इसलिए यहाँ पत्थर की एक प्राचीर स्थापित की गई और पत्थर का एक स्तम्भ खड़ा किया गया। यहाँ भगवान् जन्मे थे, इसलिए लुंबिनी ग्राम का कर उठा दिया गया और (पैदावार का) आठवाँ भाग भी (जो राजा का हक था) उसी ग्राम को दे दिया गया।"

इसके अतिरिक्त अशोकावदान ग्रन्थ में उक्त यात्रा का जिस प्रकार से

---

actual examples of kings who were monks at the same time, and find no reason for the assumption that Asoka, even temporarily, abdicated the throne.

"Whatever may be the right interpretation of his association with the Sangha, there is no doubt that since this event Asoka exerted himself with unflagging zeal for the propagation of Buddhism, or at least that part of it which he accepted at his *Dharma.* He not only set up a net work of missions to preach the doctrine both in and outside India, but himself undertook tours for this purpose, and took various other steps to the some end."

The Age of Imperial Unity, History and culture of The Indian people Vol. II, p. 75-76

१. अशोक के धर्म-लेख, जनार्दन भट्ट।

वर्णन मिलता है, उससे भी 'संबे-उपेते' शब्द इस यात्रा के साथ ही अधिक संगत बैठता है। अशोक की यात्रा के सम्बन्ध में वहाँ बताया गया है—राजा (अशोक) ने (अपने गुरु उपगुप्त से) कहा—'मैं उन सभी स्थलों की यात्रा करना चाहता हूं, जहां भगवान बुद्ध ठहरे थे। ऐसा करके मैं उन स्थानों का आदर करना चाहता हूं तथा चिरकाल तक के लोगों को शिक्षा मिले, ऐसे स्थायी स्मृति-स्तम्भों के द्वारा उनको उत्कीर्ण करना चाहता हूं।' गुरुजी ने इस योजना की अनुमति दी और यात्रा में मार्ग-दर्शक बनना स्वीकार कर लिया। विशाल सेना सहित सम्राट् ने क्रमशः सभी तीर्थ-स्थानों की यात्रा की।

"सर्वप्रथम लुम्बिनी उद्यान की यात्रा की गई। यहाँ (गुरु) उपगुप्त ने कहा—'महाराज! यहाँ भगवान् बुद्ध जन्मे थे। और आगे कहा : जिनके दर्शन ही मनोहर हैं—ऐसे भगवान् बुद्ध के समादर में यहाँ प्रथम स्मृति-स्तम्भ खड़ा किया जाता है। यहाँ जन्म के अनन्तर ही श्रमण गौतम ने भूमि पर सात कदम भरे थे।'

"राजा ने उस स्थान के लोगों को एक लाख स्वर्ण-मुद्रा प्रदान कीं और स्तूप बनवाया। तत्पश्चात् वे कपिलवस्तु गये।

"बाद में उस राजयात्री ने बोध-गया स्थित बोधि-वृक्ष के दर्शन किये और एक लाख स्वर्ण-मुद्राओं की भेंट चढ़ाई तथा चैत्य बंधवाया। बनारस के समीप ऋषिपत्तन, जहाँ गौतम बुद्ध ने 'धर्मचक्र' का प्रवर्तन किया था, और कुशीनारा, जहाँ तथागत निर्वाण को प्राप्त हुए थे, भी राजा ने देखे तथा उसी प्रकार की भेंट चढ़ाई। श्रावस्ती में तीर्थयात्रियों ने जेतवन-विहार के दर्शन किये, जहाँ कि गौतम ने दीर्घकाल के लिए निवास किया था और उपदेश दिया था, तथा वहीं पर बुद्ध के शिष्य सारिपुत्र, मौद्गलायन व महाकाश्यप के स्तूपों का भी सम्मान किया, परन्तु जब राजा ने वक्कुल के स्तूप के दर्शन किये, तब उसने केवल एक ताम्र-सिक्का भेंट चढ़ाया, क्योंकि वक्कुल ने साधना-मार्ग में थोड़े ही परीषह सहन किये थे और अपने बन्धु प्राणियों पर कुछ भी उपकार नहीं किया था। गौतम के अनन्य शिष्य आनन्द के स्तूप पर तो राजा की भेंट साठ लाख स्वर्ण-मुद्रा की राशि में चढ़ाई गई।"[1]

---

१. "The king said : "I desire to visit all the places where the

अशोक अपने जीवन में बौद्ध भिक्षु भी बना, भले ही वह थोड़े काल के
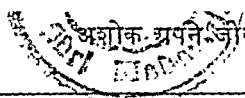
Venerable Buddha stayed, to do honour unto them, and to mark each with an enduring memorial for the instruction of the most remote posterity". The saint approved of the project, and under took to act as a guide. Escorted by a mighty army the monarch visited all the holy places in order.

The first place visited was the Lumbini Garden. Here Upagupta said, 'In this spot, great king, the Venerable One was born', and added, 'Here is the first monument consecrated in honour of the Buddha, the sight of whom is excellent. Here, the moment after his birth, the recluse took seven steps upon the ground.'

The kind bestowed a hundred thousand gold pieces on the people of the place, and built a *STUPA*. He then passed on to Kapilavastu.

The royal pilgrim next visited the Bodhi-tree at Bodh Gaya, and there also gave largess of a hundred thousand gold-pieces, and built a *CHIATYA* Rishipatana (Sarnath) near Banares, where Gautama had turned 'the wheel of the law', and Kusinagar, where the Teacher had passed away, were also visited with similar observances. At Sravasti the pilgrims did reverence to the Jetavana monastery, were Gautama had so long dwelt and taught, and to the *STUPAS* of his disciples, Sariputra, Maudgalayana, and Mahakasyapa. But when the king visited the *STUPA* of Vakkula, he gave only one copper coin, inas much as Vakkula had met with few obstacles in the path of holiness and had done little good to his fellow creatures. At the *STUPA* of Ananda, the faithful attendant of Gautama, the royal gift amounted to six million gold pieces."

लिए क्यों न हो; यह बहुत सारे विद्वानों की धारणा है। बहुत सम्भव तो यही है कि उक्त यात्रा उसने भिक्षु-पर्याय धारण करके ही की हो। उस समय वह राजा नहीं रहा, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार 'संघे-उपेते' शब्द का अभिप्राय भी सार्थक हो जाता है।

उक्त शिलालेखों में अशोक ने यह भी बताया है कि मैं 'संघ-उपेत' होने से ढाई वर्ष पूर्व उपासक बना। 'संघ-उपेत' होने का काल जब राज्याभिषेक के २० वर्ष पश्चात् का है तो उपासक बनने का समय राज्याभिषेक के साढ़े सत्रह वर्ष बाद होता है। यह काल ठीक तीसरी बौद्ध-संगीति का है। सामान्यतया कहा जा सकता है कि अशोक राज्याभिषेक के ६ वर्ष पश्चात् बौद्ध धर्म का अनुयायी बन गया था, परन्तु लगता यह है कि उसने संगीति-काल से ही अपने-आपको पूर्ण उपासक-धर्म में दीक्षित माना है। तात्पर्य यह हुआ कि सम्राट् अशोक राज्याभिषेक के साढ़े सत्रह वर्ष बाद उपासक बना, २० वर्ष पश्चात् 'संघ उपेत' हुआ और २१ वर्ष पश्चात् उसने उक्त लघु शिलालेख खुदवाये।

उक्त शिलालेखों की जो दूसरी महत्त्वपूर्ण बात है, वह शिलालेख की अन्तिम पंक्ति 'व्युठेना सावने कटे २५६ सतविवासात' से सम्बन्धित है। इस पंक्ति के अर्थ में भी नाना मत मिलते हैं। व्युठेना संस्कृत के व्युष्टेन और विवासा संस्कृत के विवासात् का अपभ्रंश है। व्युष्ट यह शब्द विपूर्वक वस् धातु में क्त-प्रत्यय लगने से सिद्ध होता है और विवास शब्द विपूर्वक वस् धातु में घञ् प्रत्यय लगने से बनता है। डा० बुह्लर, डा० फ्लीट आदि कई विद्वानों ने 'व्युष्टेन' का अर्थ—जो चला गया हो अर्थात् 'बुद्ध' तथा विवासा का अर्थ 'बुद्ध का निर्वाण' ऐसा किया है।[1] डा० फ्लीट ने यह भी माना है :[2] बुद्ध-निर्वाण के २५५ साल

—'*Asokavadana*' Translated by Dr. Vincent A. Smith, '*The Pilgrimage of Asoka*' in *Asoka* (The Rulers of India) pp. 227-228.

१. *Journal of Royal Asiatic Society*, 1904, pp. 1-26 and Dr. Buhler, '*Second Notice*'; *Indian Antiquary*, 1893.

२. *Journal of Royal Asiatic Society*, 1910, pp. 1301-S-1911, pp. 1091-1112.

बाद सातवें या आठवें महीने में महाराज अशोक ने राजसिंहासन छोड़कर प्रव्रज्या ग्रहण की होगी, तभी से वे संघ में आये होंगे। इस प्रकार से ८ मास १६ दिन पूरे होने पर २५६वीं रात को उन्होंने यह शिलालेख लिखवाया होगा। एक प्रश्न यह भी उठता है कि इस लेख में २५६वीं रात्रि का विशेष रूप से उल्लेख करने की क्या आवश्यकता थी? इसका उत्तर यह है—प्रवास की २५६वीं रात या २५६वें दिन को बुद्ध भगवान् के निर्वाण से २५६ साल पूरे होने की वर्षगाँठ मनाने के लिए अशोक ने लघु शिलालेख खुदवाये थे। इसलिए यह सिद्ध होता है कि इस शिलालेख में २५६ की संख्या इस बात की सूचक है कि बुद्ध भगवान् का निर्वाण अशोक के २५६ वर्ष पूर्व हुआ था। डा० फ्लीट एवं डा० बुह्लर की उक्त मीमांसा बहुत शोधपूर्ण है, पर वर्तमान इतिहासकारों[1] की दृष्टि में यह अभिमत अर्द्धमान्य-सा ही रहा है। उनका कहना है कि यह तो ठीक है कि वह शिलालेख सम्राट् अशोक की धर्म-यात्रा के २५६वें पड़ाव या २५६वें दिन को लिखा गया था, पर वह भगवान बुद्ध की २५६वीं निर्वाण-जयंती के उपलक्ष में लिखा गया, यह यथार्थ नहीं लगता है; क्योंकि अशोक के काल (ई० पू० २७३–२३६) के साथ बुद्ध-निर्वाण के २५६ वर्षों की, प्रचलित किसी भी निर्वाण-तिथि के आधार पर संगति नहीं बैठती। किन्तु डा० मैक्सम्यूलर ने इतिहासकारों के इस अभिमत की स्पष्टतया आलोचना की है और डा० बुह्लर के मत का समर्थन किया है। सेक्रेड बुक्स ऑफ दें ईस्ट के अन्तर्गत, खण्ड १० धम्मपद की भूमिका में उन्होंने लिखा है: "इन शिलालेखों (लघु शिलालेख नं० १ और २) की शब्दावली से सम्बन्धित कठिनाइयों को मैं पूर्णरूप से स्वीकार करता हूँ; किन्तु फिर भी मैं पूछता हूँ कि ये शिलालेख अशोक ने नहीं खुदवाये तो किसने खुदवाये? और यदि अशोक ने ही खुदवाये, तो उसमें रही हुई तारीख, बुद्ध-निर्वाण के २५६ वर्ष, के अतिरिक्त और क्या अर्थ रख सकती है? डा० बुह्लर ने अपनी दूसरी विज्ञप्ति में इन दृष्टि-बिन्दुओं के विषय में इतनी विद्वत्ता-पूर्ण तर्कणाएँ रखी हैं कि मुझे डर लगता है, मैं और अधिक लिख कर सम्भवतः

---

१. उदाहरणार्थ देखें: Dr. Vincent A. Smith, *Asoka*, p. 150; Dr. H. C. Ray Chaudhuri, *Political History of Ancient India*, p. 341; यदुनन्दन कपूर, अशोक, पृ० १२८।

उनके पक्ष को कहीं निर्बल न बना दूं। अतः अपने पाठकों को मेरे विचार जानने के लिए उन्हीं (डा० बुह्लर) की 'दूसरी विज्ञप्ति' देखने का सुझाव देता हूँ।[1]

इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय और महत्त्व की बात यह है कि प्रस्तुत पुस्तक में ई० पू० ५०२ के जिस बुद्ध-निर्वाण-काल पर हम पहुंचते हैं, वह इन शिलालेखों के उक्त कथन के साथ पूर्णतया संगत होता है। यह तो स्पष्ट हो ही चुका है कि उक्त शिलालेख सम्राट् अशोक के 'संघ-उपेत' होने के कुछ अधिक एक वर्ष पश्चात् लिखे गये हैं और अशोक अपने राज्याभिषेक के २० वर्ष पश्चात् 'संघ-उपेत' होता है। यहां हम काल-गणना के एक निश्चित बिन्दु पर पहुँच जाते हैं जो कि सर्वमान्य और निर्विवाद है। वह है—ई० पू० २६६ में अशोक का राज्याभिषेक। निष्कर्ष हुआ—

अशोक का राज्याभिषेक—ई० पू० २६६।
अशोक का संघ-उपेत होना—ई० पू० २४८।[2]
उक्त शिलालेखों का लिखा जाना—ई० पू० २४७।

---

१. "I fully admit the difficulties in the Phraseology of these inscriptions; but I ask, "who could have written these inscriptions, if not Asoka? And how if written by Asoka, can the date which they contain mean anything but 250 years after Buddha's *Nirvana*? These points, however, have been argued in so masterly a manner by Dr. Buhler in his "*Second Notice*" that I should be afraid of weakening his case by adding anything of my own, and must refer my readers to his "*Second Notice*"

—Max Muller, *S.B.E.*, vol. X, (Part I) *Dhammapada* Introduction P. XII.

२. डा० राधाकुमुद मुखर्जी ने बताया है कि अशोक के संघ-उपेत होने के पश्चात् ही उसने विदेश में जोर-शोर से धर्म-प्रचार-कार्य प्रारम्भ किया था। इतिहासकारों ने महेन्द्र के लंका-प्रवास की तिथि ई० पू० २४६ मानी है (*Cambridge History of India*, p. 507) अतः अशोक के 'संघ-उपेत' होने की ई० पू० २४८ की तारीख पुष्ट हो जाती है।

इस प्रकार हम ई० पू० २४७ से जब २५५ वर्ष और पीछे जाते हैं, तो बुद्ध-निर्वाण का समय आता है—२४७+२५५=ई० पू० ५०२[1]।

४. बर्मी परम्परा

परम्परा-सम्बद्ध प्रमाणों में सबसे सबल प्रमाण बर्मी परम्परा का है। बर्मा में ईत्झाना[2] (Eetzana) नामक संवत् का प्रचलन चला आता है। 'ईत्झाना' शब्द का अर्थ है—अंजन। कहा जाता है, यह सम्वत् बुद्ध के नाना 'अंजन' ने प्रचलित किया था। राजा अंजन शाक्य क्षत्रिय थे और उनका राज्य देवदह प्रदेश में था। बर्मी परम्परा के अनुसार उस सम्वत् की काल-गणना में बुद्ध के जीवन-प्रसंग इस प्रकार माने जाते हैं :

१. बुद्ध का जन्म : ईत्झाना[3] सम्वत् के ६८वें वर्ष में काटसन[4] (वैशाख) मास के पूर्णिमा के दिन शुक्रवार को, जब चन्द्रमा का विशाखा नक्षत्र के साथ योग था।

२. बुद्ध का गृह-त्याग (दीक्षा) ईत्झाना[5] सम्वत् के ९६वें वर्ष में जुलाई (आषाढ़) मास में, पूर्णिमा के दिन सोमवार को, जब चन्द्रमा का उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के साथ योग था।

३. बुद्ध की बोधि-प्राप्ति : ईत्झाना[6] सम्वत् के १०३वें वर्ष में काटसन

---

१. डा० फ्लीट का यह अभिमत कि बुद्ध-निर्वाण के २५६वें वर्ष में और यात्रा के २५६वें पड़ाव में उक्त शिलालेख लिखा गया, यह 'व्युठेनासावने कटे २५६ सत विवासात' का अर्थ होना चाहिए; बहुत ही यथार्थ है। इसके साथ हम इतना और जोड़ सकते हैं कि उक्त शिलालेख लिखे जाने का वह निर्वाण-दिवस सम्भवतः कुशीनारा में आया हो, जहाँ कि भगवान् का निर्वाण हुआ था और अशोक की यात्रा का वह एक प्रमुख पड़ाव था।

२. *Life of Gautama* by Bigandet, Vol, I, p. 13.

३. *Ibid*, Vol. II, pp. 71-72.

४. 'काटसन' बर्मी भाषा में 'वैशाख' का पर्यायवाची शब्द है।

५. *Life of Gautama* by Bigandet, Vol. I, pp. 62-63; Vol. II, p. 72.

६. *Ibid*, Nol. I, p. 97 ; Vol. II, p. 72-73.

(वैशाख) मास में, पूर्णिमा के दिन, बुधवार को, जब चन्द्रमा का विशाखा नक्षत्र के साथ योग था।

४. बुद्ध का निर्वाण : ईत्झाना[1] संवत् के १४८वें वर्ष में, काटसन (वैशाख) मास में पूर्णिमा के दिन मंगलवार को, जब चन्द्रमा का विशाखा नक्षत्र के साथ योग था।

वर्मी परम्परा के अनुसार ईत्झाना संवत् का प्रारम्भ तगू[2] (चैत्र) मास में कृष्णा-प्रथमा के दिन रविवार को होता है।[3]

इस वर्मी काल-क्रम को एम० गोविन्द पै ने ईस्वी सन् के काल-क्रम में इस प्रकार ढाला है[4] :

१. जन्म : ई० पू० ५८१, मार्च ३०, शुक्रवार।
२. गृह-त्याग : ई० पू० ५५३, जून, १८, सोमवार।
३. बोधि-प्राप्ति : ई० पू० ५४६, अप्रैल ३, बुधवार।
४. निर्वाण : ई० पू० ५०१, अप्रैल १५, मंगलवार।
५. ईत्झाना सम्वत् का प्रारम्भ : ई० पू० ६४८, फरवरी १७, रविवार।

इस प्रकार भगवान् बुद्ध के जन्म, गृह-त्याग, बोधि और निर्वाण के सम्बन्ध से हम जिस काल-क्रम पर पहुंचे हैं, वर्मी परम्परा उस काल-क्रम का पूर्णतः समर्थन कर देती है। तथ्य की पुष्टि में यह एक अनोखा संयोग कहा जा सकता है और वह इसलिए कि अपने निष्कर्षों पर पहुंचने तक वर्मी परम्परा की ये धारणाएं लेखक के सामने नहीं थीं। इन वर्मी परम्पराओं का साक्षात् लेखक को तब होता है, जब यह पूरा प्रकरण लेखमाला के रूप में जैन-भारती

---

१. Life of Gautama by Bigandet Vol. II, p. 69.
२. 'तगू' वर्मी भाषा में 'चैत्र' मास का पर्यायवाची शब्द है।
३. *Life of Gautama* by Bigandet, Vol. I, p. 13.
४. *Prabuddha Karnataka*, a Kannada Quarterly published by the Mysore University, Vol. XXVII, (1945-46), No. 1, p. 92-93 ; *The Date of Nirvana of Lord Mahavira* in *Mahavira Commemoration Volume*, pp. 93-94.
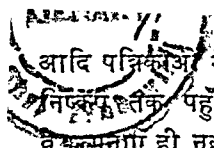
आदि पत्रिकाओं में निकल चुकता है। इससे यह भी प्रमाणित हो जाता है कि निष्कर्ष तक पहुंचने के लिए हमने जिन कल्पनाओं का सहारा लिया था, वे कल्पनाएं ही नहीं वस्तुस्थिति तक पहुंचने की यथार्थ पगडण्डियां ही थीं।

कुल मिलाकर चारों ही प्रमाण विभिन्न दिशाओं से चलने वाले पथिकों की तरह एक ही ध्रुव-विन्दु पर पहुंच कर उस ध्रुव-विन्दु की सत्यता के प्रमाण वन गये हैं।

परिशिष्ट १

कैवल्य-प्राप्ति के पश्चात्, भगवान् महावीर के चातुर्मासों का कालक्रम[१] :—

१.	ई० पू० ५५७	राजगृह
२.	,, ,, ५५६	वैशाली
३.	,, ,, ५५५	वाणिज्यग्राम
४.	,, ,, ५५४	राजगृह
५.	,, ,, ५५३	वाणिज्यग्राम
६.	,, ,, ५५२	राजगृह
७.	,, ,, ५५१	,,
८.	,, ,, ५५०	वैशाली
९.	,, ,, ५४९	,,
१०.	,, ,, ५४८	राजगृह
११.	,, ,, ५४७	वाणिज्यग्राम
१२.	,, ,, ५४६	राजगृह
१३.	,, ,, ५४५	,,
१४.	,, ,, ५४४	श्रेणिक की मृत्यु—कोणिक का राज्यारोहण—चम्पा में राजधानी—मिथिला-चातुर्मास।
१५.	,, ,, ५४३	महावीर का चम्पा में पदार्पण—रथमुसल व महाशिलाकंटक युद्ध का प्रारम्भ—श्रेणिक की रानियों की दीक्षा—श्रावस्ती में पदार्पण (जनवरी में)—गोशालक की मृत्यु—मिथिला-चातुर्मास।

---

१. आचार्य विजयेन्द्रसूरि-कृत 'तीर्थंकर महावीर' के आधार से

१६.	,,	,,	५४२	वाणज्यग्राम
१७.	,,	,,	५४१	राजगृह
१८.	,,	,,	५४०	वाणिज्यग्राम
१९.	,,	,,	५३९	वैशाली
२०.	,,	,,	५३८	,,
२१.	,,	,,	५३७	राजगृह
२२.	,,	,,	५३६	नालन्दा
२३.	,,	,,	५३५	वैशाली
२४.	,,	,,	५३४	,,
२५.	,,	,,	५३३	राजगृह
२६.	,	,,	५३२	नालन्दा
२७.	,,	,,	५३१	मिथिला
२८.	,,	,,	५३०	,,
२९.	,,	,,	५२९	राजगृह
३०.	,,	,,	५२८	पावापुरी (मल्ल-राज्य) में अन्तिम वर्षावास कार्तिक अमावस्या (अक्टूबर—नवम्बर) में निर्वाण

परिशिष्ट २

भगवान् बुद्ध के बोधि-प्राप्ति के पश्चात् वर्षावासों का कालक्रम[1]

१.	ई०	पू०	५४७	ऋषि-पतन
२.	,,	,,	५४६	राजगृह—महावीर के साथ की दिव्य शक्ति[2] की घटना
३.	,,	,,	५४५	राजगृह
४.	,,	,,	५४४	राजगृह—अजातशत्रु का बुद्ध से मिलन (श्रामण्यफल पूछना)
५.	,,	,,	५४३	वैशाली
६.	,,	,,	५४२	मंकुल-पर्वत
७.	,,	,,	५४१	त्रयस्त्रिंश
८.	,,	,,	५४०	सुसुमारगिरि
९.	,,	,,	५३९	कौशाम्बी
१०.	,,	,,	५३८	पारिलेयक
११.	,,	,,	५३७	नाला
१२.	,,	,,	५३६	वैरंजा (दुर्भिक्ष)
१३.	,,	,,	५३५	चालिय-पर्वत
१४.	,,	,,	५३४	श्रावस्ती
१५.	,,	,,	५३३	कपिलवस्तु
१६.	,,	,,	५३२	आलवी
१७.	,,	,,	५३१	राजगृह
१८.	,,	,,	५३०	चालिय-पर्वत

---

१. अंगुत्तरनिकाय, अट्ठकथा, २—४—५ के आधार से

२. चुल्लवग्ग, ५; धम्मपद अट्ठकथा, ४—२

१९.	ई०	पू०	५२९	चालिय-पर्वत
२०.	,,	,,	५२८	राजगृह
२१.	,,	,,	५२७	श्रावस्ती
२२-४५.		,,	५२६-५०३	,,
४६.	,,	,,	५०२	वैशाली